अप्रैल-जून 2018 अंक : 175

अनुवाद

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के
आंशिक वित्तीय सहयोग से प्रकाशित

संपादक मंडल

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल
डॉ. कुसुम अग्रवाल
शुचिता मीतल
श्रीमती संतोष खन्ना
डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम
श्री जैमिनि कुमार श्रीवास्तव
प्रो. पूरनचंद टंडन

संस्थापक संपादक
स्व. डॉ. गार्गी गुप्त

संपादक
नीता गुप्ता
डॉ. हरीश कुमार सेठी

सहायक संपादक
डॉ. आलोक रंजन पांडेय
डॉ. कुलभूषण शर्मा

भारतीय अनुवाद परिषद
Translators' Association of India

अनुवाद : अनुवाद कला, विज्ञान एवं शिल्प का त्रैमासिक

पंजीकरण संख्या : 10552/64 ISSN : 0003-6218

© भारतीय अनुवाद परिषद (Translators' Association of India)

आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचार परिषद तथा संपादक मंडल की नीतियों एवं विचारों को प्रतिबिंबित करें।

संस्थापक संरक्षक : स्व. डॉ. सुलेख चंद्र गुप्त

संस्थापक संपादक : स्व. डॉ. गार्गी गुप्त

संपादक मंडल : श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल, श्रीमती संतोष खन्ना, प्रो. पूरनचंद टंडन, डॉ. कुसुम अग्रवाल, डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम, शुचिता मीतल, श्री जैमिनि कुमार श्रीवास्तव

परामर्श मंडल : श्री ब्रजकिशोर शर्मा (विधि), डॉ. रणजीत साहा (बांग्ला), प्रो. वी.बै. ललितांबा (कन्नड़), प्रो. चमनलाल सप्रू (कश्मीरी), प्रो. जी. गोपीनाथन (मलयालम), प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित (अनुवाद-विज्ञान), डॉ. श्याम सिंह 'शशि' (समाजशास्त्र), प्रो. शंकर लाल पुरोहित (उड़िया)

संपादक : नीता गुप्ता, डॉ. हरीश कुमार सेठी

सहायक संपादक : डॉ. आलोक रंजन पांडेय, डॉ. कुलभूषण शर्मा

व्यवस्थापक संपादक : श्री चारु शेखर गुप्ता

सहयोग : सुश्री गीता, सुश्री साधना, श्री राकेश कुमार श्रीवास्तव

मुद्रक : अर्चना प्रिंटर्स, 1/1955, गली नं. 22-ए, ईस्ट राम नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : 011-22135900, मोबाइल : 9811357243
ई-मेल : archanaprinter2009@gmail.com, hemadrprakashan@gmail.com

प्रकाशक : भारतीय अनुवाद परिषद, 24 स्कूल लेन (बेसमेंट), बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-110001

सामान्य अंक : 100/-रुपए, वार्षिक शुल्क : 500/-रुपए (व्यक्तिगत), 1,000/-रुपए (संस्थागत)
आजीवन शुल्क : 5,000/-रुपए (व्यक्तिगत), 10,000/-रुपए (संस्थागत)

ANUVAD

A Quarterly on the art, science and craft of translation
EDITORS : NEETA GUPTA, DR. HARISH KUMAR SETHI

Published by Bhartiya Anuvad Parishad (Translators' Association of India)
24, School Lane (Basement), Bengali Market, New Delhi-110 001 (India)
Tel.: 91-11-23327202, 23352278 **Fax :** 91-11-23319488, 23327472
Web : www.bhartiyaanuvadparishad.org
E-mail : bap.1964@gmail.com

अनुक्रम

'अनुवाद' बनाम 'रूपांतर' / **(संपादकीय)** -- 5

विश्व ग्राम और अनुवाद-प्रौद्योगिकी / **शालिनी श्रीवास्तव** -- 13

अनुवाद की भाषा के रूप में राजभाषा हिंदी की चुनौतियाँ / **प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी** -- 18

अनुवाद में शैली का निर्वाह / **प्रो. गजानन चव्हाण** -- 23

मुहावरे और लोकोक्तियों का अनुवाद / **प्रो. पूरनचंद टंडन** -- 35

अनुवाद में सटीक शब्दावली प्रयोग : विविध संदर्भ / **डॉ. हरीश कुमार सेठी** -- 45

नागार्जुन की बांग्ला कविताएँ और उनका अनुवाद / **डॉ. रणजीत साहा** -- 56

Institutional Efforts in Translation in India / **Harish Jain** -- 65

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की अनुवाद दृष्टि / **डॉ. आनंद कुमार शुक्ल** -- 73

क्रिसमस वृक्ष और विवाहोत्सव (रूसी कहानी) / **प्योदर दोस्तोवेस्की (अनु. संतोष खन्ना)** -- 77

तुम (हिंदी कहानी और अंग्रेजी अनुवाद) / **कमलेश बख्शी** -- 84

You (English Story) / **Kamlesh Bakshi (Tr. Bani Motwani)** -- 91

साँड (मलयालम कहानी) / **डॉ. सुमित पी.वी. (अनु. डॉ. संगीता के.)** -- 97

पाँच अंग्रेजी हाइकू और उनका हिंदी अनुवाद / **प्रो. नंदिनी साहू** -- 101

अफसोस (गुजराती कविता) / **मुनि राज सुंदर विजय (अनु. अ.म. चांपानेरी)** -- 102

अनुवाद सिद्धांत चिंतन की नाट्य-रूप में नायाब प्रस्तुति (पुस्तक समीक्षा) / **रमेश चंद्र** -- 103

'अनुवाद' पत्रिका के रूसी विशेषांक का लोकार्पण (रिपोर्ट) / **डॉ. किरण सिंह वर्मा** -- 107

लेखक मंडल

शालिनी श्रीवास्तव : असिस्टेंट प्रोफेसर (अनुवाद विज्ञान), अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-282005

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी : 1764, औट्रम लाइंस, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

प्रो. गजानन चव्हाण : 3 नताशा, फूड वर्ल्ड लेन, डी.पी. रोड, औंध, पुणे-411007

प्रो. पूरनचंद टंडन : हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. हरीश कुमार सेठी : असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

डॉ. रणजीत साहा : एम.जी. 1/26, विकासपुरी, नई दिल्ली 110018

हरीश जैन : शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

डॉ. आनंद कुमार शुक्ल : 330/241/1, चौखंडी, कीडगंज, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश-211003

संतोष खन्ना : बी.एच./48, (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

रानी मोटवाणी : 12-ए, आनंद विहार, सेंट मार्टिन रोड, बांद्रा (पश्चिम), मुंबई-400050

डॉ. सुमित पी.वी. : वयलायी, चुंडा पोस्ट, चेरुपुषा मार्ग, कण्णूर, केरल-670511

डॉ. संगीता के. : कुडजाद्री, पालयाड पोस्ट, वेल्लोषुक्क, कण्णूर, केरल-670661

प्रो. नंदिनी साहू : प्रोफेसर (अंग्रेजी), मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

अ.मा. चंपानेरी : वटामण, ता. धोलका, जिला अहमदाबाद-382265 (गुजरात)

रमेश चंद्र : 46/22, गांधी नगर, गली नं. 12, पिक इंडिया के पीछे, पटौदी रोड, गुरुग्राम-122001

डॉ. किरण सिंह वर्मा : रूसी अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

संपादकीय

'अनुवाद' बनाम 'रूपांतर'

पिछले कुछ समय से अंग्रेजी के Translation शब्द के लिए समतुल्य हिंदी पर्याय 'अनुवाद' की सटीकता पर विद्वानों में चर्चा-परिचर्चा की जा रही है। इस चर्चा-परिचर्चा के आधार पर Translation के हिंदी पर्याय 'अनुवाद' के स्थान पर 'रूपांतर' शब्द को व्यवहार में लाने की बात कही जाती है। इसलिए आज 'अनुवाद' बनाम 'रूपांतर' शब्द पर विस्तार से विचार करना जरूरी है।

रोमन जेकोब्सन ने 'ऑन ट्रांसलेशन' शीर्षक पुस्तक में 'ऑन लिंग्विस्टिक आस्पैक्ट्स ऑफ ट्रांसलेशन' निबंध में एक ही भाषा में अनुवाद (इंट्रा-लिंगुअल ट्रांसलेशन/अंतःभाषिक अनुवाद); एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद (इंटर-लिंगुअल ट्रांसलेशन/अंतरभाषिक अनुवादक); और दो भिन्न माध्यमों अथवा प्रतीक व्यवस्थाओं (एक भाषिक प्रतीक तथा दूसरा भाषेतर संप्रेषण प्रतीक) में अनुवाद (इंटर-सिमियोटिक ट्रांसलेशन/अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद) की चर्चा की है। आधुनिक संदर्भों में, इनमें से एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद को 'वास्तविक अनुवाद' (ट्रांसलेशन प्रॉपर) कहा जाता है। इस प्रकार, अनुवाद दो भाषाओं के बीच की जाने वाली व्यावहारिक गतिविधि है। इस गतिविधि को 'Translation या अनुवाद' की संज्ञा दी जाती है।

'अनुवाद' और 'Translation' में से अंग्रेजी शब्द को लेकर तो कोई विशेष चर्चा-परिचर्चा नहीं मिलती। 'Translation' शब्द अंग्रेजी के 'to translate' क्रिया का संज्ञा रूप है। इस 'Translate' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'Translatum' से हुई, जो Trans+latum से मिलकर बना है। इस पूर्वपद (उपसर्ग) Trans का अर्थ है -- beyond, through, across (उस पार या दूसरी ओर); तथा latum (lation) का अर्थ है -- to carry (ले जाना)। व्युत्पत्ति के आधार पर 'Translatum' अथवा 'Translation' शब्द का एक ही अर्थ है -- पारगमन, पारवहन या दूसरी ओर ले जाना। भाषा के संदर्भ में देखें तो 'Translation' एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में ले जाने वाला क्रिया-व्यापार है।

अब अगर थोड़ी-सी बात 'ट्रांसलेशन' शब्द के हिंदी पर्याय की भी कर ली जाए। 'ट्रांसलेशन' के हिंदी पर्याय के रूप में 'अनुवाद' शब्द की कमोबेश स्वीकार्यता है। पहले, 'अनुवचन', 'अनुवाक्', 'पश्चात्कथन', 'टीका', 'भाषानुवाद', 'आवृत्ति', 'सार्थक आवृत्ति' आदि संस्कृत के इन शब्दों के साथ-साथ 'अनुवाद' शब्द को भी प्रयुक्त किया जाता था। लेकिन भारतीय संदर्भ में पिछले कुछ समय से 'Translation' के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले 'अनुवाद' शब्द के स्थान पर अन्य पर्याय प्रयोगों को लेकर गाहे-ब-गाहे चर्चा सुनने को मिल जाती है। इनमें से जिस शब्द के प्रयोग की मुख्य रूप से चर्चा की जाती है, वह है -- 'रूपांतर'। ऐसे में 'अनुवाद'

के पर्याय के रूप में 'रूपांतर' शब्द की सटीकता पर विचार जरूरी है। लेकिन, इससे पहले, थोड़ा इतिहास के पन्नों को पलटने और 'अनुवाद' शब्द पर विचार करना ज्यादा उपयुक्त होगा।

'अनुवाद' संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द है, जो 'अनु' उपसर्ग तथा 'वाद' शब्द के संयोग से बना है। इनमें से 'अनु' उपसर्ग आम तौर पर 'पीछे' अथवा 'बाद में' आदि अर्थों का सूचक है। संस्कृत की 'वद्' धातु से विकसित शब्द (भाववाचक संज्ञा) 'वाद' का अर्थ है -- 'कथन', 'विचार-विमर्श', 'बोलना', 'भाषण' आदि। इस प्रकार, 'अनुवाद' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है -- 'अनुकथन' या किसी के द्वारा कहने के बाद उसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए दोबारा कहना अथवा पुनःकथन (दोबारा कथन) अथवा पुनरुक्ति (पुन+उक्ति, दोबारा कथन)। पुनःकथन के कारण इस 'अनुवचन' और 'अनुवाक्' आदि शब्दों को पर्याय के रूप में देखा जाता रहा है। चूँकि पीछे/दोबारा बोलने (पुनरुक्ति) में भाषा अर्थांतरित हो जाती है और इस प्रकार पहले की कही हुई बात का 'अनुवाद' हो जाता है। भारतीय पारंपरिक शिक्षा पद्धति मौखिक परंपरा पर आधारित थी और गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुल में गुरु जो कुछ बोलते या फिर मंत्रों आदि का उच्चारण करते थे, शिष्य उन कथनों को गुरु के पीछे-पीछे दोहराते थे। यानी वे गुरु के शब्दों की बारंबार पुनरुक्ति करते थे। इसी को 'अनुवाद', 'अनुवचन', 'अनुवाक्' या 'पश्चकथन' कहा जाता था। इस तथ्य और व्युत्पत्ति को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि 'अनुवाद' शब्द का अर्थ है -- एक बार कही गई बात को दोहराना या पुनर्कथन।

'अनुवाद' शब्द की उपर्युक्त पारंपरिक व्याख्या से यह बात निकलकर आती है कि यह एक ही भाषा में कही गई बात को उसी भाषा में दोबारा कहने (दोहराने) से संबंधित था; लेकिन इस अर्थ-संदर्भ में दो भाषाओं में परस्पर अंतरण का भाव नहीं था। अन्य शब्दों में, प्राचीनकाल में भारत में 'अनुवाद' शब्द को दो भाषाओं के बीच घटित होने वाली गतिविधि के रूप में नहीं देखा जाता था। चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में अन्य भाषा से/में अनुवाद की परंपरा नहीं थी। इस तरह की अनुवाद परंपरा प्राप्त नहीं होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए 'अनुवाद' पत्रिका की संस्थापक-संपादक डॉ. गार्गी गुप्त ने 'अनुवाद-बोध' पुस्तक में ये विचार व्यक्त किए हैं कि ''उन दिनों वेद-पुराण, ब्राह्मण, उपनिषद जैसे ग्रंथ तथा कालिदास, भवभूति जैसी अद्वितीय प्रतिभाएँ किसी भी विदेशी भाषा में न थीं और न ही हमारे यहाँ विदेशी भाषाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था थी, इसीलिए 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग अन्य भाषाओं के प्रसंग में व्यवहृत नहीं होता था।'' (पृ. 29) आगे, उन्होंने यह भी लिखा है कि ''जब से हमारे यहाँ विदेशों से संपर्क बढ़ा और विदेशी भाषाओं का प्रयोग आरंभ हुआ, अनुवाद शब्द के अर्थ का विकास होने लगा।'' (पृ. 29) स्पष्ट है कि पहले विधिवत 'वास्तविक अनुवाद' के संदर्भ में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था। तब 'टीका', 'भाष्य' और 'अन्वय' आदि अन्य विधाओं का प्रचलन था, जिनके माध्यम से संस्कृत के क्लिष्ट पाठों की सरल व्याख्या की जाती थी।

मध्यकाल के दौरान, 'अनुवाद' के अलावा 'भाषा' शब्द का व्यवहार भी नजर आता है। रीतिकाल के सोमनाथ और जसवंत सिंह जैसे कतिपय कवि-आचार्यों के अनुवाद कर्म में इसे

स्वयं स्वीकार किया है। उदाहरण के लिए, कवि-आचार्य सोमनाथ का निम्नलिखित कथन इसी तथ्य को प्रमाणित करता है :

कही बहादुर सिंह एक दिना सुख पाइ।
सोमनाथ या ग्रंथ की, भाषा देहु बनाई।।

संभवतः इसीलिए, 'भाषानुवाद' जैसे शब्द को भी प्रयुक्त किया जाता रहा है। हालाँकि इससे पहले 'अनुवाद' के संदर्भ में 'भाष्य' और 'टीका' शब्द भी व्यवहार में नजर आता है, लेकिन ये शब्द 'अनुवाद', 'अनुवचन', 'अनुवाक्' और 'पश्चात्कथन' से भिन्न अर्थ-संदर्भ लिए हुए हैं। संस्कृत में 'भाष्य' और 'टीका' की सुदीर्घ परंपरा रही है। वेदों-उपनिषदों के अनेक भाष्य हुए हैं। इसके अलावा, संस्कृत में विरचित आर्ष ग्रंथों और अनेक क्लासिकल साहित्यिक ग्रंथों के भाष्य-टीकाएँ उपलब्ध हैं। आर्ष ग्रंथों की व्याख्या 'भाष्य' कहलाती है और क्लासिकल संस्कृत ग्रंथों की व्याख्या 'टीका'। उदाहरण के लिए, आचार्य विश्वेश्वर की 'हिंदी अभिनव भारती', 'हिंदी ध्वन्यालोकलोचन', आचार्य विश्वनाथ विरचित संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'साहित्य दर्पण' पर डॉ. सत्यव्रत सिंह की व्याख्या, संत ज्ञानेश्वर द्वारा 'भगवद्गीता का अनुवाद 'ज्ञानेश्वरी' अथवा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक द्वारा गीता की मूल सामग्री का 'गीता-रहस्य' नाम से भाष्य उपलब्ध हैं।

आगे चलकर, मुगलकाल के दौरान 'अनुवाद' के संदर्भ में 'तर्जुमा' और 'उल्था' शब्दों के प्रयोग को भी देखा जाता है। इन शब्दों के प्रयोग के मूल में फारसी प्रभाव रहा है। 'तर्जुमा' शब्द 'रज़म' (razam) से बना है, जिसका अर्थ है -- 'interpret'। शाब्दिक अर्थ के धरातल पर तर्जुमा, अनुवाद से अधिक स्पष्ट अर्थ-व्यंजक है और इसमें निर्वचन (interpretation) भी शामिल है। यहाँ यह उल्लेख करना भी अनुचित न होगा कि सभी अनुवाद व्याख्याओं (explanations) के पहलू ही हैं। इसीलिए 'अनुवाद' के साथ-साथ 'तर्जुमा' और 'उल्था' शब्दों का भी खूब प्रयोग किया गया। उदाहरण के लिए, हिंदी साहित्य के आधुनिककाल के जनक 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' (1850-1885) ने अपने साहित्य में इन तीनों (अनुवाद, तर्जुमा, उल्था) शब्दों का प्रयोग किया था। जैसे 'रत्नावली' के अनुवाद की भूमिका में उन्होंने लिखा है -- 'नाटकों का तर्जुमा प्रकाशित होता जाएगा।' लेकिन, कालांतर में इनमें से अंतिम दोनों शब्द (तर्जुमा और उल्था) बहुत अधिक चलन में नहीं आए। और, 19वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते 'अनुवाद' शब्द ही स्थायी रूप से स्वीकृत और मान्य हो चुका था।

अब तक की गई चर्चा से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि स्वयं 'अनुवाद' शब्द ने 'अनुवचन', 'अनुवाक', 'अनुकथन', 'भाषा' (भाषानुवाद), 'तर्जुमा' और 'उल्था' जैसे कई पर्याय प्रयोगों से होड़ करते हुए एक निश्चित लंबी यात्रा तय करने के बाद स्थिरता को प्राप्त किया है। लेकिन, इसके बावजूद, अधुनातन चर्चा-परिचर्चा के जरिए पर्याय प्रयोग के रूप में 'अनुवाद' और 'रूपांतर' की सटीकता के प्रश्न को उठाया जाता है; इसे 'अनुवाद बनाम रूपांतर' तक के इर्द-गिर्द समेट दिया जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'वास्तविक अनुवाद' की संज्ञा प्राप्त 'ट्रांसलेशन' करने की प्रक्रिया के दौरान किसी एक भाषा में व्यक्त विचार अथवा भाव को दूसरी भाषा में फिर से व्यक्त किया जाता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में विचारों की यह अभिव्यक्ति-यात्रा तीन आधारभूत तत्वों के जरिए तय हो पाती है -- विचार अथवा कथ्य (संदेश); कथन की भाषा (अर्थात स्रोत भाषा); और कथ्य को अंतरित करने की भाषा (अर्थात लक्ष्य भाषा)। ट्रांसलेशन इन्हीं तीनों तत्वों से संपन्न हो पाता है। अनुवाद-कर्म में स्रोत भाषा और पाठ का प्रतिपाद्य विषय ही अनुवादक का केंद्रीय सरोकार होता है और उसे मूल पाठ के प्रति मूलनिष्ठ रहते हुए अनूदित पाठ को मौलिक पाठ की भाँति सहज और स्वाभाविक स्वरूप वाला बोधगम्य पाठ बनाना होता है। इस स्थिति में मूल पाठ के प्रति निष्ठा को बनाए रखना और यथासंभव उसे बिना किसी तरह की विशेष हानि पहुँचाए, दूसरी भाषा में मूल के आशय को संप्रेषित करना ही अनुवादक का दायित्व होता है। स्वाभाविक है कि इस प्रक्रिया में विचार या कथ्य तो यथावत बना रहता है और भाषा का माध्यम बदल जाता है -- वह स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अंतरित हो जाता है। देखा जाए तो इस प्रक्रिया के मूल में अंतरण तो केवल भाषा का हुआ है। इसीलिए इस प्रक्रिया को 'भाषांतर' या 'भाषांतरण' भी कह दिया जाता है। लेकिन, यहाँ चर्चा का प्रश्न 'रूपांतर' शब्द से जुड़ा हुआ है।

भाषा के अंतरण (अनुवाद) की प्रक्रिया में (स्रोत भाषा पाठ का) रूप बदल जाता है, इसलिए 'अनुवाद' शब्द प्रयुक्त करने के स्थान पर 'रूपांतर' या 'रूपांतरण' शब्द प्रयुक्त करने के पक्ष में विचार हमारे सामने आते हैं। जबकि, वास्तविकता यह है कि जीवविज्ञान (विशेष तौर पर वनस्पति विज्ञान), समाजशास्त्र, सृजनात्मक कर्म, माध्यम परिवर्तन आदि विविध विषयों या क्षेत्रों में व्यवहृत होने वाले 'रूपांतर' शब्द को जब हम अनुवाद के संदर्भ में देखते हैं तो यह स्रोत भाषा पाठ के सभी रूपों के अंतरण से संबंधित व्यापक आयाम को लिए हुए है। वैसे तो जब 'रूप' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह दृश्यमानता की ओर संकेत करता है। भाषा के स्तर पर यह दृश्यमानता लिखित रूप का संकेत करती है। जबकि, 'रूपांतर' के संदर्भ में यह विभिन्न स्तरों की संकेतक है।

रूपांतर के विभिन्न स्तरों में स्रोत भाषा पाठ का लक्ष्य भाषा पाठ रूप में अंतरण, स्रोत पाठ रूप की लक्ष्य भाषिक मंचीय प्रस्तुति और स्रोत पाठ का लक्ष्य भाषिक स्क्रीन या फिल्म रूपांतरण जैसे स्टीरियो टाइप पक्ष शामिल हैं। वैसे, इन सभी संदर्भों में स्रोत पाठ की स्रोत भाषा के ही अन्य पाठ रूप (सोर्स टेक्स्ट टू ऐनदर सोर्स टेक्स्ट) में, स्रोत भाषिक मंचीय प्रस्तुति और स्क्रीन अथवा फिल्मांतरण जैसे रूपांतरण भी शामिल हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन गतिविधियों में भाषा के स्तर पर रूप का अंतरण न होकर केवल विधा या माध्यम में परिवर्तन किया जाता है। यदि एक विधा या माध्यम की भाषा सामग्री का उसी भाषा की दूसरी विधा या माध्यम में इस प्रकार का समान-भाषिक रूपांतरण (सेम लैंग्वेज एडाप्टेशन) किया जाता है तो रूपांतर, सृजनात्मक लेखन (क्रिएटिव राइटिंग) के अंतर्गत 'मीडिया लेखन' विषय के अंतर्गत आता है। और, जब यही गतिविधि

(अर्थात रूपांतर) विधा या माध्यम परिवर्तन के साथ-साथ भाषा परिवर्तन से भी जुड़ जाती है (यानी दो भाषाओं के बीच की गतिविधि हो जाती है) तो वह 'अनुवाद' विषय-क्षेत्र से संबद्ध हो जाती है।

वास्तविकता यह है कि रूपांतरण एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसका एक प्रकार भाषिक अनुवाद है। इस प्रक्रिया में भाषा और विषय-वस्तु के साथ-साथ स्रोत भाषा पाठ का लक्ष्य भाषा पाठ रूप में अंतरण, स्रोत पाठ रूप की लक्ष्य भाषिक मंचीय प्रस्तुति और स्रोत पाठ का लक्ष्य भाषिक स्क्रीन या फिल्म रूपांतरण जैसे स्टीरियोटाइप पक्षों का तो अंतरण किया ही जाता है, साथ ही इसमें स्रोत भाषा पाठ को स्थानीयकृत (देशीकृत) रूप देना या फिर उसका अनुकूलन (रिसेप्शन) या 'अभिग्रहण' (एप्रोपिएशन) करना जैसे स्तर भी शामिल होते हैं। इसके अलावा इसमें 'विधा' और 'प्रारूप' (फॉर्मेट) के अंतरण (दूसरी भाषा-समाज के साथ अनुकूलित रूप लिए हुए क्लोनिंग) के आयाम भी शामिल हैं। ये सभी आयाम 'रूपांतर' को विशिष्टता प्रदान करते हैं; उसे अनुवाद की विशिष्ट विधा बना देते हैं।

एक विशिष्ट विधा के रूप में रूपांतरण, अनुवाद की सीमित-सुनिश्चित परिभाषा से अलग अस्तित्व वाला सिद्ध होता है। रूपांतरण के इन विभिन्न और व्यापक स्तरों के कारण स्रोत भाषा पाठ की जब लक्ष्य भाषा में प्रस्तुति होती है तो वह अक्षरशः वास्तविक अनुवाद नहीं रह जाता; रूपांतरित पाठ 'छायानुवाद', 'अनुसृजन' और 'अंतरप्रतीकात्मक' अनुवाद आदि बनकर मूल भाषा और प्रतिपाद्य विषय को दूर तक ले जा सकता है। या फिर, परिवर्तन -- स्थानीयकृत रूप में देशी रचना प्रतीत हो सकती है। और यदि मूल पाठ का लक्ष्य भाषा में अभिग्रहण किया गया हो तो अभिगृहीत रचना नया पाठ तक का रूप लिए हुए हो सकती है। जबकि, वास्तविक अनुवाद-कर्म के केंद्र में एक स्रोत पाठ और उसका प्रतिपाद्य होता है, जिसे दूसरी भाषा में अर्थ और शैली के स्तर पर यथासंभव समतुल्य प्रस्तुत करना होता है। अगर अनूदित पाठ अर्थ के धरातल पर मूल से दूर हो जाए, वह मूल की छाया का आभास मात्र कराने वाला हो या फिर स्रोत भाषा (मौलिक) पाठ से इतर नया -- अनुसृजित (recreated) -- पाठ हो जाए तो वह लक्ष्य भाषा में रूपांतरित भले ही कहलाएगा, लेकिन वह वास्तविक अनुवाद नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि अनुवाद की तुलना में रूपांतरण विभिन्न स्तरों पर किया जा सकता है। इस कारण 'रूपांतरण' को 'अनुवाद' के एक प्रकार के रूप में स्वीकार किया जाता है; विशिष्ट विधा माना जा सकता है। लेकिन इसे 'अनुवाद' शब्द के पर्याय के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती क्योंकि 'ट्रांसलेशन' (वास्तविक अनुवाद) मूल पाठ केंद्रित होता है -- न कि परिवर्तनों से युक्त एक नया स्वतंत्र पाठ।

वास्तविक अनुवाद की अवधारणा यानी संपूर्ण संप्रेषण प्रक्रिया (total communication process) के अंतर्गत स्रोत भाषा पाठ के कथ्य/संदेश और अभिव्यक्ति शैली की लक्ष्य भाषा में निकटतम समतुल्य प्रस्तुति शामिल है। यह अनूदित पाठ को 'closest natural equivalent' (निकटतम सहज समतुल्य) अस्तित्व प्रदान करती है क्योंकि एक भाषा में कही गई बात को

दूसरी भाषा में समान रूप से प्रस्तुत करना करना कठिन होता है। सच्चाई यह है कि दो भाषाओं की संरचना, प्रकृति, व्याकरण, शब्द संयोजक, पर्याय, शैलीगत अंतर, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व आदि कठिनाई पैदा करते हैं। इसका अर्थ यह है कि अनुवाद मूल के निकट/निकटतम तो हो सकता है, परंतु उसमें मूल की सभी बारीकियाँ शत-प्रतिशत नहीं आ सकतीं। इसलिए नाइडा ने अर्थ और शैली दोनों को महत्व देने के बावजूद उनमें से अर्थ (कथ्य) की समतुल्यता को प्रमुखता दी है। यानी नाइडा को अभिव्यक्ति शैली के स्तर पर लक्ष्य भाषा में समतुल्यता बनाए रखने की गौण स्थिति स्वीकार्य है -- ''अर्थ को अनिवार्य रूप से प्राथमिकता देनी चाहिए.. . हालाँकि विषय-वस्तु की तुलना में शैली गौण है, लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण है।'' ('...meaning must be given priority... though style is secondary to content, it is nevertheless important.') समतुल्यता की इस कसौटी पर परखें तो रूपांतरण में कथ्य और अभिव्यक्ति -- भले ही गौण -- का निकटतम समतुल्य बने रहना संदिग्ध नजर आता है। विधा, माध्यम या प्रारूप आदि के स्तर पर परिवर्तन करने या फिर मूल पाठ का स्थानीयकरण/अभिग्रहण करते समय 'समतुल्यता' को बनाए रखना लगभग असंभव है। उदाहरण के लिए, अगर किसी विदेशी भाषा-संस्कृति की साहित्यिक रचना के सौंदर्य-लालित्य और मूल के विदेशीपन को लक्ष्य भाषा में उसी सौंदर्य-लालित्य के साथ किंतु देशीपन में प्रस्तुत किया जाए तो वह 'अनुवाद' न होकर रूपांतरण कहलाएगा। स्पष्ट है कि रूपांतरण की प्रक्रिया में रूपांतरकार विभिन्न स्तरों पर परिवर्तन-समायोजन करता है, जबकि अनुवाद कर्म में मूल के सौंदर्य और लालित्य के साथ-साथ उसके विदेशीपन को बनाए रखना भी अपेक्षित होता है; लक्ष्य भाषा पाठ का मूल की खुशबू से सुरभित होना अनिवार्य होता है। इसलिए, अनुवाद की तुलना में हर कृति का रूपांतरण संभव नहीं है।

समतुल्यता की कसौटी अनुवाद और रूपांतरण में स्पष्ट विभाजक रेखा खींचती है। लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है कि रूपांतरण में समतुल्यता संभव ही नहीं। रूपांतरण में यह समतुल्यता केवल तभी संभव हो सकती है जब कथ्य या कथावस्तु में सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता हो। उस स्थिति में कृति के मूल भाव को बनाए रखते हुए उसे विश्व के किसी भी पात्र अथवा देश-काल (परिवेश आदि) में परिवर्तित करते हुए ढाला जा सकता है, किंतु स्थानीयता से संपन्न मूल कृति का रूपांतरण असंभव अथवा बहुत अधिक कठिन कार्य है।

यहाँ प्रश्न यह भी उभरता है कि विभिन्न स्तरों पर परिवर्तन के कारण क्या अनुवाद-कर्म की तुलना में 'रूपांतरण' सरल कार्य है? इसका उत्तर यह है कि तात्विक दृष्टि से 'अनुवाद' और 'रूपांतरण' -- दोनों ही दो भाषाओं के बीच अंतरण संबंधी कौशल-कर्म से युक्त गतिविधियाँ हैं। दोनों में समानता का एक आयाम यह भी है इन्हें निष्पादित करने वालों में विशेष निपुणता की आवश्यकता होता है। किंतु, यह भी सही है कि इन दोनों कर्मों के लिए अलग-अलग अपेक्षाएँ होती हैं। इसके अलावा, इनके मानक और कसौटियाँ भी अलग-अलग हैं। इसलिए इनका अलग-अलग अस्तित्व भी है। इस बारे में गुलाबदास ब्रोकर ने बड़ी उचित टिप्पणी की

है कि ''अनुवादक और रूपांतरकार दोनों ही कभी-कभी कठिन समस्याओं में फंस जाते हैं। कभी अनुवाद दुष्कर लगता है तो कभी रूपांतर। कभी रूपांतर निष्पक्ष करने में अधिक कौशल प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है तो कभी अनुवाद में। किंतु इस प्रकार की समस्याएँ और कठिनाइयाँ प्रायः सभी कलाओं के साथ हैं। कलाओं की श्रेष्ठता के प्रतिमान भी अलग-अलग हैं।'' (अनुवाद, अंक 42, पृ. 59)

अब तक की गई चर्चा यह प्रश्न भी उठाती है कि 'रूपांतरण' का औचित्य क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों है? इसका क्या लाभ है? इन प्रश्नों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि विधा अथवा माध्यम परिवर्तन के जरिए लक्ष्य भाषी और देशी (स्थानीय) संस्कृति में आबद्ध, रची-पची और न्यायसंगत तौर पर प्रतिरोपित रचना 'अपनी' लगती है, उसमें विदेशीपन की गंध नहीं होती। इस प्रकार के प्रतिरोपण से लक्ष्य भाषा में विदेशी कथानक की देशी प्रस्तुति करने या उसे अपने भाषा-समाज पर थोपने का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। रूपांतरित रचना, मूल के समान, स्थानीय संदर्भ में भी मानव मर्म के मन को छू लेने और स्पंदित करके इतर-भाषी समाज के रसास्वादन का निमित्त बनती है। इस तरह की न्यायसम्मत प्रतिरोपित रचना अन्य भाषा समाज-संस्कृति तक पहुँचकर विस्तार प्राप्त करती है; लक्ष्य भाषी समाज उसके रूपांतरित संस्करण से अवगत हो जाता है। स्वाभाविक है कि इससे लक्ष्य भाषी पाठक वर्ग को अनूदित या फिर मूल रचना पढ़ने की प्रेरणा भी मिलती है। रूपांतरण के औचित्य-आवश्यकता को इन्हीं परिप्रेक्ष्यों में देखा जाना चाहिए।

वास्तविकता यह है कि भाषा के जरिए अभिव्यक्ति प्राप्त 'कथ्य' को 'ट्रांसलेशन' की प्रक्रिया में मुख्यतः दूसरी भाषा में अंतरित किया जाना होता है। लेकिन किसी भी भाषा में प्रयुक्त शब्द, उनके पर्याय, अर्थ, व्यंजना और विन्यास आदि मात्र ही अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होते बल्कि इससे स्रोत भाषा-प्रयोक्ता संस्कृति का संप्रेषण भी होता है। इन सभी को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों अर्थांतरित (अर्थात अर्थ संप्रेषित) करना संभव नहीं होता। इसलिए अंतरित रचना का भाव-संसार मूलवत नहीं होता। यह भी सही है कि भाषांतरण की प्रक्रिया में जो रूपांतरण होता है, वह मूल की तुलना में थोड़ा कम अथवा ज्यादा ही हो पाता है। इसलिए 'ट्रांसलेशन' की प्रक्रिया के दौरान इसमें मूल का छूट जाना या फिर कुछ जुड़ जाना स्वाभाविक ही नहीं, अपरिहार्य भी होता है। लेकिन यह अनुवादक की प्रतिभा, ज्ञान और अभ्यास से ही संभव हो पाता है कि अंतरण की प्रक्रिया में मूल का न्यूनतम छूटे या जुड़े। अगर इस प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिए 'अनुवाद' शब्द के स्थान पर केवल 'रूपांतर' शब्द का ही प्रयोग किया जाए तो इससे उसकी पहुँच, प्रभाव तथा प्रासंगिकता से काटकर पूरी प्रक्रिया को एक भिन्न दायरे में देखने का भाव आ जाएगा। इसलिए हर कृति का यथावत अनुवाद संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, टेनीसी विलियम्स (Tennesse Williams) के किसी भी नाटक में पिता का पात्र निभा रहा कलाकार अपने पौत्रों (पुत्र के लड़कों) और पुत्रवधुओं तक के सामने अपने पुत्र के यौन संबंधों के बारे में खुलकर बातचीत कर सकता है, किंतु आज के भी भारतीय

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में इस प्रकार की बातचीत या चर्चा करने के बारे में कल्पना करना भी असंभव है। इसलिए इस प्रकार के नाटक का लक्ष्य भाषा में अनुवाद या रूपांतरण करते समय मूल के प्रसंग, देश-काल के आलोक में विशेष प्रकार के समायोजन के धरातल पर उपचारित किए जाने की अपेक्षा रखते हैं।

अब तक की गई चर्चा के आलोक में, रूपांतरकार के लिए अपेक्षित कुछ गुणों और दायित्व की ओर संकेत करना भी ठीक रहेगा। अनुवाद और रूपांतर संबंधी काम करने वालों को स्रोत और लक्ष्य भाषाओं के साथ-साथ विषय-विशेष, उसकी पारिभाषिक शब्दावली और गहन-व्यापक जीवनानुभव तथा लोक-ज्ञान का होना तो आवश्यक है ही, साथ ही दोनों भाषाओं की संस्कृतियों का सम्यक बोध भी जरूरी है। यदि किसी सर्जनात्मक कृति का अनुवाद या रूपांतर किया जा रहा हो तो अनुवादक का सर्जनात्मक प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति से न केवल संपन्न होना जरूरी होता है, बल्कि उसमें पारंगत होना भी आवश्यक होता है। उसे कृति से स्वयं को निर्वैयक्तिकता की मनोभूमि पर खड़े रहकर, मूल रचना को आत्मसात करते हुए रचनाकार के साथ तादात्म्य स्थापित करना होता है। अपनी इसी विशद-पारंगत सर्जनात्मक प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति आदि गुणों के बल पर वह स्रोत भाषा के भाषिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों को लक्ष्य भाषा-संस्कृति के देश-काल एवं परिवेश के अनुरूप ढालते हुए प्रतिरोपित कर पाने योग्य हो पाता है। रूपांतरकार में रंगमंच बोध, मंचीयता या फिल्मीकरण करना जैसे लक्ष्य विधा या माध्यम संबंधी अतिरिक्त गुण भी अपेक्षित हैं। विशिष्ट स्वरूप वाले इस प्रतिरोपण के लिए रूपांतरकार में विशेष किस्म के अनुभव-कौशल की निपुणता की आवश्यकता होती है। इस बिंदु पर आकर रूपांतरकार की अनुवाद-कौशल निपुणता वास्तविक अनुवाद-कर्म के सापेक्ष ज्यादा गंभीर कार्य का रूप धारण कर लेती है। लेकिन, इसके बावजूद, अनुवादक और रूपांतरकार की कार्यकुशलता के मूलभूत आधार एकसमान ही हैं। मूल रचना के भाव-बोध, कवित्व, कथानक, सामग्री सौंदर्य-लालित्य आदि को लक्ष्य भाषी पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करना दोनों (अनुवादक और रूपांतरकार) का मुख्य उद्देश्य होता है।

वस्तुतः 'अनुवाद' और 'रूपांतरण' का अपना-अपना पृथक अस्तित्व होते हुए भी परस्पर संबंधित शब्द हैं। अनुवाद अपने शाब्दिक अर्थ में भाषा का अंतरण (भाषांतरण) है, जबकि रूपांतरण भाषा और अन्य माध्यम के बीच हो सकता है। इसलिए भाषिक अनुवाद में रूपांतरण उसका एक प्रकार है। विशेष बात यह है कि ये दोनों अपने-अपने क्षेत्र में कला हैं। अनुवाद की अनेक विधाओं में 'रूपांतरण' भी एक विशिष्ट विधा है, जिसे रचना को स्थानीयकृत या विधांतरण जैसे किसी न किसी विशिष्ट उद्देश्य के निमित्त अनुवाद-कर्म के एक प्रकार/विधा विशेष के रूप में व्यवहार में लाया जाता है। साथ ही, विभिन्न स्तरों पर परिवर्तन करते हुए लक्ष्य भाषा में और उसके देश-काल तथा संस्कृति के अनुरूप परिवर्तित रचना का मूल कथानक, धारणा और प्रभाव से युक्त बने रहना ही रूपांतर है, अन्यथा रूपांतरित पाठ स्थानीयकृत रूप वाला 'छायानुवाद' अथवा 'अनुसृजन' तक के साँचे में व्याप्त हो जाएगा।

❑

शालिनी श्रीवास्तव

विश्व ग्राम और अनुवाद-प्रौद्योगिकी

अनुवाद वह प्रौद्योगिकी है जो भाषाओं की सीमाओं को तोड़ती हुई आदमी को आदमी से जोड़ती है; आदमी को समाज से जोड़ती है और अंततः विश्व से जोड़ती है। अपने मूल अर्थ के अनुरूप अनुवाद, ज्ञान को इस पार से उस पार ले जाता है। अनुवाद और प्रौद्योगिकी का यह संबंध जितना नया है, उतना ही पुराना भी है। नया इस रूप में कि यह लोकल से ग्लोबल और ग्लोबल से लोकल होते हुए विश्व-ग्राम बनाने की प्रक्रिया में डिजिटल डिवाइड को पाटने वाला सबसे कारगर उपकरण है और पुराना इसलिए कि अनुवाद ही विभिन्न भाषाओं और भाषा-भाषियों को आपस में जोड़ने वाली, उनमें संवाद स्थापित करने वाली सबसे पुरानी प्रौद्योगिकी है। अनुवाद ने भाषा-साहित्य और संस्कृतियों के बीच नित नए पुल बनाए हैं; शब्दों से शब्दों का संवाद संभव किया है और परंपराओं में संचित ज्ञान के इंटरेक्शन के द्वारा भविष्यगामी विज्ञान के रास्ते खोले हैं।

अपने सरलतम और सीमित अर्थ-संदर्भ में अनुवाद दो भाषाओं के बीच होने वाला संवाद है। इस संवाद की विशेषता यह है कि ये अपनी प्रकृति में समतुलनकारी होता है। यह भाषा-व्यवस्थाओं के व्यतिरेक पर अपनी दृष्टि केंद्रित करता है और उसके अध्ययन एवं विश्लेषण के जरिए दो भिन्न भाषा-भाषियों के बीच मौजूद संवादहीनता की खाई को पाटते हुए परस्पर संवाद कायम करता है। यही कारण है कि अनुवाद एक विषय के रूप में कठिन साधना है और व्यवसाय के रूप में बेहद जोखिम और जिम्मेदारी-भरा कार्य।

अनुवाद एक ऐसा व्यवसाय है जो अपनी कार्य-प्रकृति में शुद्ध रूप से लाभोन्मुख न होकर मानोन्मुख, मानवोन्मुख, और जिम्मेदारी-भरा है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साथ लगातार नजदीक आते विश्व में अपने बढ़ते महत्व और आवश्यकता के कारण अनुवाद को विषय और व्यवसाय, दोनों रूप में गंभीरता से लिए जाने की जरूरत है। यह संतोष की बात है कि इस बारे में हमारा अकादमिक जगत पहले की तुलना में कुछ जागरुक और सचेत हुआ है। विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षण संस्थानों के भाषा विभागों के अंतर्गत अनुवाद को एक स्वतंत्र विषयानुशासन के रूप में जगह मिल रही है। अनुवाद के नए विभाग खुले हैं। जहाँ आज से कुछ साल पहले तक इस विषय के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का शिक्षण-प्रशिक्षण

किताबी ज्ञान तक सीमित था, वहीं अब इसे एक कौशल, एक टेकनीक के रूप में विकसित करने के लिए नियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों और पाठ्यचर्याओं पर ध्यान दिया जा रहा है। उच्चतर अध्ययन के दौरान अनुवाद प्रबंधन और अनुवाद प्रौद्योगिकी जैसे बिंदुओं पर विशेषज्ञता विकसित करने पर जोर दिया जा रहा है।

भाषाओं के बाजार में आज की व्यवसायोन्मुख और प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति को देखते हुए अनुवाद को यह नवीन दिशा और दृष्टि देना इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इनसे जुड़े बिना न तो इस विषय का समुचित विकास तथा संवर्धन संभव है -- न ही व्यक्ति का और न ही समाज का। फिर चाहे वह अनुवाद का सैद्धांतिक संदर्भ हो या अनुप्रयोगात्मक क्षेत्र या फिर अभियांत्रिकीय और प्रौद्योगिकीय पक्ष। सूचना-आधारित समाज की नई अपेक्षाओं के अनुसार अनुवाद प्रौद्योगिकी अनुवाद कार्य-प्रक्रिया की व्यावहारिक आवश्यकता बनती जा रही है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के पहियों पर ही आज विश्व की गति और प्रगति संभव है, लेकिन सूचनाओं के संचार यानी बहुभाषिक आदान-प्रदान को अनुवाद ने संभव बनाया है। संचार प्रौद्योगिकी महज एक जालतंत्र, एक साधन है। सूचना उसका तत्व है और अनुवाद सूचनाओं के संचार या संवाद का आधार। सूचना तकनीकी विकास की तेज रफ्तार को आज हम मेट्रो ट्रेन की गति के रूप में देख सकते हैं। लेकिन यह ट्रेन तभी तेज गति से चल सकेगी जब इसका ट्रैक उसकी गति के अनुकूल हो। संचार प्रौद्योगिकी की ट्रेन अनुवाद रूपी जिस ट्रैक पर चल रही है, उसे अगर समुन्नत और सक्षम नहीं बनाया गया तो न केवल रफ्तार बाधित होगी बल्कि दुर्घटना का खतरा भी रहेगा। इसलिए अनुवाद प्रौद्योगिकी को इस नए परिदृश्य के अनुरूप विकसित करके विश्व की गति और प्रगति को तीव्रतर बनाया जा सकता है।

एक सूत्र रूप में कहे तो भाषा संवाद की आधारभूत प्रौद्योगिकी है और अनुवाद भाषाओं के संवाद की प्रौद्योगिकी। यह संवाद ज्ञान और विज्ञान का भी है, कला, साहित्य, संस्कृति का तथा राजनीति और व्यापार का भी। वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी का उद्देश्य इसी संवाद को सरल, सुगम एवं सुनिश्चित बनाना है। अर्थात् प्रकारांतर से प्रौद्योगिकी का विश्व-भाषाओं और उनके अनुवाद से गहरा ताल्लुक है। इसकी कुछ मानवीय और लोकतांत्रिक अपेक्षाएँ हैं। इसके अलावा, कुछ नैतिक, व्यावसायिक और दक्षतापरक निष्ठाएँ भी हैं।

स्वास्थ्य देखभाल, फार्मास्यूटिकल्स, जैव प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, विज्ञान, आई.टी, दूरसंचार, मीडिया, विपणन, विज्ञापन, कानून, प्रशासन, व्यापार, वित्त, पेटेंट, बौद्धिक संपदा जैसे अनेकानेक क्षेत्रों में अनुवाद प्रौद्योगिकी अपनी विशिष्ट भाषा-तकनीकी और संचार-तकनीकी संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए उपयुक्त डिजाइन और प्रत्येक विशेषज्ञता-क्षेत्र के लिए अंतःसेवा संकुल (इंटर-सर्विसेज हब) प्रदान करती है। यह एक बहुआयामी, बहुसंवेदी कार्य-प्रक्रिया तंत्र है। इसका तकनीकी पक्ष उतना ही जटिल है जितना कि भाषावैज्ञानिक पक्ष। अनुवाद के लिहाज से संप्रेषण-व्यापार केवल दो भाषाओं की व्याकरण एवं कोशीय व्यवस्थाओं के बीच ही नहीं बल्कि

बहुस्तरीय-बहुव्यवस्थाओं (मल्टीलेयर-पॉलीसिस्टम्स) के बीच संपन्न होने वाली अंतरण प्रक्रिया है। अतः इसकी तकनीकी या मशीनी प्रोसेसिंग भी उतनी ही सूक्ष्म (डेलिकेट) और जटिल (कॉम्प्लेक्स) हो जाती है।

हिंदी और भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अनुवाद-प्रौद्योगिकी की चुनौतियाँ दो स्तरों पर हैं -- एक, भारतीय भाषाओं का जटिल परंपरागत समाज-सांस्कृतिक और राजनैतिक परिदृश्य तथा दो, हिंदी और शेष विश्व का व्यापक तौर पर अभाषित बहुभाषिक परिदृश्य। स्पष्ट तौर पर आज विश्व-भर में हिंदी की माँग बाजार और व्यापार संबंधी कारणों से पैदा हुई है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान के ही पिछले दस साल के आँकड़ों को देखें तो चीन, जापान, कोरिया आदि देशों से हिंदी सीखने के लिए आने वाले शिक्षार्थियों की संख्या में कई गुना वृद्धि हुई है। ये विद्यार्थी हिंदी सीखकर अपनी प्रायोजक कंपनियों के व्यापार और व्यापारिक नीतियाँ तैयार करने में मदद कर रहे हैं। भारतीय या और भी स्पष्टता से कहें तो हिंदी भाषी विद्यार्थी अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाएँ सीखने में उतना परिश्रम नहीं करते जितने परिश्रम से अन्य भाषा-भाषी विद्यार्थी हिंदी सीखते हैं, वह भी अन्य भाषा शिक्षण के समुचित साधनों-उपकरणों के बिना।

भारत में विदेशी भाषा के नाम पर अंग्रेजी पर अतिनिर्भरता और अंग्रेजी की व्यापक पकड़-जकड़ का नतीजा यह है कि यह सारा व्यापारिक और बाजारी आवागमन प्रायः एक दिशीय होकर रह गया है। आज भारतीय बाजार विदेशी माल से पटे पड़े हैं। बाजारों के होर्डिंग्स से मीडिया तक विज्ञापनों में अंग्रेजी का बोलबाला है। धीरे-धीरे इसकी पैठ विज्ञापनों के रास्ते से अखबारों, टी.वी. समाचारों, रेडियो-एफएम की उद्घोषणाओं और हमारी रोजमर्रा की भाषा में इस कदर हो गई है कि भाषाई सांख्यिकी के आँकड़ों की सूरत और सीरत तेजी से बदल रही है।

यह बहुत शुरुआती तस्वीर है। बाजार का दबाव भाषा के ऊपरी ढाँचे पर ही नहीं है, बल्कि भाषा की अंतर्भंगिमा, अभिव्यक्ति संवेदना और अंततः हिंदी सहित समूची भारतीय भाषाओं की समाज-सांस्कृतिक तथ्य-सामग्री -- सब कुछ इससे बुरी तरह प्रभावित हुई है। उदाहरण के लिए मल्टीचैनल युग के तमाम टी.वी. धारावाहिकों के कथानक, चरित्र, संवाद शैली, रूपांकन, दृश्यांकन आदि पर नजर डालिए, स्थिति स्पष्ट हो जाएगी। यदि इन स्थितियों की गंभीरता को अब भी गंभीरता से नहीं समझा गया तो यह भले ही अति कथन लगे परंतु हिंदी और तमाम भारतीय भाषाएँ बाजार की ताकतों द्वारा निचोड़ ली जाएँगी। यहीं अनुवाद की जिम्मेदारी का सवाल प्रासंगिक होता है। भारतीय भाषाओं में डबिंग की हुई हालीवुड चीनी, दक्षिण भारतीय फिल्मों और विदेशी कार्टून धारावाहिकों या ऐसे ही अन्य कार्यक्रमों की भाषा पर ध्यान दीजिए और जरा सोचिए कि आप तक, आपके बच्चों तक अनूदित होकर आखिर क्या पहुँच रहा है?

जब तक हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को अन्य भाषा-भाषी समाजों से बेहतर समन्वय तथा ज्ञान-विज्ञान की समस्त विधाओं में बेहतर संवाद स्थापित करने के लिए सूचना क्रांति को भारत की अपनी भाषाओं के रूप में नहीं जोड़ा जाता तब तक इनके वैश्विक प्रसार के

लक्ष्यों को नहीं प्राप्त किया जा सकता, न ही इन्हें सूचना प्रौद्योगिकी का वास्तविक लाभ पहुँचाया जा सकेगा।

ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भारतीय परिदृश्य में भारतीय भाषाओं के परस्पर संवाद की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए ही संभवतः भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की पहली बैठक में कहा था, ''अनुवाद के माध्यम से मूल पाठ तक पहुँच बनाना इसलिए महत्वपूर्ण है कि इससे विभिन्न क्षेत्रों की उलझी हुए समस्याओं का समाधान सरल हो जाएगा।'' शिक्षा में लोगों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित करना, ज्ञान का विस्तार दिलाना और लगातार सीखना ही इसका उद्देश्य था। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रिपोर्ट के अनुसार भारत जैसे बहुभाषी देश में विदेशी भाषाओं तथा क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध साहित्य के अनुवाद के लिए अपार संभावनाएँ है। बाद में यही तथ्य भारतीय भाषा संस्थान द्वारा संचालित 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' नामक परियोजना की संकल्पना का मूल आधार बना। राष्ट्रीय अनुवाद मिशन के तहत विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान-राशि के गुणवत्तापूर्ण अनुवाद की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। यह भारत की सैकड़ों-हजारों वर्षों से विभिन्न परंपराओं और दक्ष श्रम-समुदायों द्वारा संचित ज्ञान राशि है। परियोजना के अंतर्गत कुल 70 विषयों को चिह्नित किया गया है।

वर्तमान समय में साहित्य, प्राकृतिक विज्ञान, जीवन विज्ञान, उपयोगी विज्ञान, समाज विज्ञान, विधिशास्त्र, चिकित्सा, प्रबंधन, प्रौद्यौगिकी आदि अनेक क्षेत्रों में अनुवाद की माँग बढ़ रही है। इस समय अनुवाद के माध्यम से उपलब्ध सामग्री अपर्याप्त, अव्यवस्थित और अनियोजित है, उपलब्ध कार्य गुणवत्ता के मानकों से अचिह्नित है। इसके अलावा, अनुवाद की बाजारी पहुँच का भी कोई सुनिश्चत हवाला नहीं है।

इन सभी स्थितियों को देखते हुए अनुवाद अध्ययन और अनुवाद-प्रौद्योगिकी को तेजी से विकसित किए जाने की जरूरत है। अपने उपलब्ध ज्ञानकोश की स्थिति एवं विस्तार को देखते हुए हमें वर्तमान से कई गुना अधिक दक्ष अनुवादकों की जरूरत है। यह जरूरत तेजी से बदलते विश्व के आर्थिक, राजनीतिक और प्रौद्योगिकीय परिदृश्य में और भी बढ़ने वाली है।

आज भाषाओं की जरूरत और उनके स्थानीयकरण के महत्व पर कोई भी सवाल खड़ा नहीं कर सकता। सूचना तकनीकी के पावर डोमेन में भी ग्लोबल होने के लिए लोकल के महत्व को स्वीकार किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में किसी भी स्तर पर समृद्ध भारतीय भाषाओं की उपेक्षा या तो क्षुद्र स्वार्थपरता का उदाहरण है या फिर मानसिक गुलामी की निशानी। चीन, जापान, कोरिया, रूस, जर्मनी, अरब मुल्क आदि दुनिया के नक्शे पर उदाहरणों की कमी नहीं है। इन तमाम गैर-अंग्रेजी देशों ने अपनी भाषा में अपना विज्ञान लिखा और अपनी प्रौद्योगिकी का विकास किया। लेकिन भारत में हम राजभाषा, संपर्क भाषा, लोकभाषा जैसे तमाम पारिभाषिक शब्द ही गढ़ते रहे, अपनी भाषाओं में अपनी प्रौद्योगिकी और समर्थ अनुवाद तंत्र विकसित नहीं कर पाए।

यह विडंबना ही है कि जिस देश के नवयुवकों ने एप्पल, आइ.बी.एम. और माइक्रोसॉफ्ट जैसी दिग्गज कंप्यूटर सॉफ्टवेयर कंपनियों की एक से बढ़कर एक प्रणालियों को विकसित किया, उसे कंप्यूटर और संचार प्रौद्योगिकी में अपनी भाषा के समर्थन के लिए विदेशी कंपनियों का मुँह देखना पड़ता है।

यह सच है कि भारतीय भाषाओं के बाजार से ही तमाम कंपनियों के शेयरों में सुर्खी छाई रहती है, लेकिन इसी दलाल स्ट्रीट में भी हिंदी और भारतीय भाषाओं के शेयरों के भाव बेजान पड़े हैं। आजादी के इतने सालों बाद भी इन तमाम आर्थिक मंडियों में अपनी भाषा में सूचनाएँ दिखाने वाली एक भी स्वतंत्र युक्ति हमारे हाथ में नहीं है। अभी कुछ समय पहले स्टार क्रिकेट ने 'हिंदी में है दम' का नारा लगाया, फिर स्टार क्रिकेट हिंदी के नाम से एक अलग चैनल पेश कर दिया। इस चैनल के सॉफ्टवेयर को ध्यान से देखिए आँकड़ों की पूरी प्रस्तुति हिंदीमय। तब मन के किसी कोने में एक सवाल उठता है -- क्या यही काम हमारी अति-सुविधा संपन्न टी.वी. चैनल एजेंसियाँ या खेलों के नियंत्रक दुनिया के सबसे अमीर क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड नहीं कर सकते थे?

आज भी भारत में व्यापार कर लाखों-करोड़ कमा रहीं कंपनियों द्वारा बेचे जाने वाले सॉफ्टवेयरों और हार्डवेयरों में हिंदी और स्थानीय भाषाओं का समावेश और समर्थन या तो बिलकुल नहीं किया गया है या बेहद रस्मी तौर पर है।

बाहर की कंपनी जब भी, जो भी करती है उसके पीछे उसके अपने लाभ का सिद्धांत निहित होता है। लेकिन अपनी भाषाओं में परस्पर संवाद के लिए, सूचनाओं के बेहतर संवाद को सुनिश्चित करने के लिए जो कुछ और जितना समर्थ ढंग से लोक कल्याणकारी शासन की व्यवस्थाएँ कर सकती हैं, वैसा और उतना क्या सचमुच भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी तथा अनुवाद प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो पाया है? इसका जवाब जितना हमारे तमाम शैक्षिक और प्रौद्योगिकी संगठन जानते हैं, उससे कहीं अधिक इस देश की पब्लिक जानती है।

यह विश्व ग्राम के हिंदी मोहल्ले में आज के हालात है। बेशक, इन हालात में बदलाव लाने की जरूरत है। भाषा केवल बोलचाल की जरूरत नहीं, व्यक्ति की रोजी-रोटी, उसका परिवार, समाज, और वह खुद भी उसी से जुड़ा होता है। इसलिए प्रौद्योगिकी को नियंत्रित करने वाली ताकतें -- चाहे वह सरकार हो या फिर बाजार -- जब तक वे भाषा को लोकोन्मुख और लोकलोन्मुख बनाने के लिए गंभीर नहीं होंगी तथा उसके लिए समर्पित प्रयास नहीं करेंगी तब तक अनुवाद का कोई भी मंत्र कारगर नहीं होगा और समूची अनुवाद प्रौद्योगिकी भी तब तक बेजान मशीनी आउटपुट बनी रहेगी।

❑

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

अनुवाद की भाषा के रूप में राजभाषा हिंदी की चुनौतियाँ

जब कोई भाषा जीवंत, स्वायत्त, मानक और समृद्ध होकर समूचे राष्ट्र अथवा देश में सार्वजनिक कार्य-व्यापारों में प्रयुक्त होती है, विभिन्न भाषाभाषी समुदायों के बीच संपर्क भाषा के रूप में काम करती है और केंद्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा सरकारी कार्यों में प्रयुक्त होने लगती है तो वह राजभाषा का पद ग्रहण कर लेती है। वास्तव में राजभाषा राष्ट्र की आर्थिक प्रगति, राजनैतिक एकता और प्रशासनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होती है। यह सरकारी कामकाज में प्रयुक्त होकर जनता तथा शासन के बीच संपर्क पैदा करती है। भारतीय संविधान-निर्माताओं ने राजभाषा का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए हिंदी को ही सक्षम माना। अतः देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा घोषित किया गया।

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। इसमें अनेक भाषाएँ बोली और प्रयुक्त होती हैं। राजभाषा संबंधी नीति का निर्धारण करते हुए यह देखना होता है कि अनेक भाषाओं में से किस भाषा को संघ की राजभाषा बनाया जाए। इस मामले में केवल भाषिक समस्या ही नहीं होती बल्कि इसमें सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक महत्व भी रहता है। बहुभाषी भारत में राष्ट्रीय एकात्मकता के निर्माण में राजभाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसमें हिंदी भाषा सर्वाधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि यह किसी क्षेत्र-विशेष की भाषा नहीं है वरन जन-जन की लोक भाषा है। 10वीं-11वीं शताब्दी में इसका प्रादुर्भाव माना जाता है और समय-समय पर इसमें परिवर्तन होते रहे हैं, लेकिन इसने अपने मानस में अधिकतर भारतीय भाषाओं एवं बोलियों के तत्वों को भी आत्मसात कर रखा है। इस दृष्टि से हिंदी भारत की संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है।

संपर्क भाषा होने के कारण हिंदी राजभाषा के साथ-साथ राष्ट्रभाषा की भूमिका भी निभाती है। वस्तुतः राष्ट्रभाषा का संबंध राष्ट्रीय चेतना से जुड़ा होता है और राष्ट्रीय चेतना का संबंध सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से होता है। इसका संबंध 'भूत' और 'वर्तमान' के साथ होता है तथा महान परंपरा के साथ इसका संबंध बना रहता है। वस्तुतः राष्ट्रभाषा राष्ट्र की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा की अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती है। यह भाषा

जनता की निजी, सहज और विश्वासमयी भाषा बन जाती है, जिसका प्रयोग राष्ट्रपरक कार्यों में चलता रहता है। वास्तव में राष्ट्रभाषा और राजभाषा वही होती है जिसमें राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ सन्निहित होती हों, अपने देश की परंपरा के प्रति प्रेम हो, राष्ट्र की संस्कृति के प्रति लगाव हो और राष्ट्र की एकता के प्रति भाव हो। जिस भाषा में राष्ट्र निष्ठा और राष्ट्रीय भावना नहीं होती, वह राष्ट्रभाषा कहलाने की अधिकारी नहीं होती। ये विशेषताएँ अपने देश की भाषाओं में ही मिल सकती हैं, विदेशी भाषा में नहीं। इस प्रकार भारत की बहुभाषिक स्थिति में हिंदी के प्रयोग की संभावनाएँ अधिक हैं, किंतु भारत संघ की यह राजभाषा कार्यालयीन अथवा प्रशानिक भाषा तक सीमित रह गई है। राजभाषा का संबंध ज्ञान-विज्ञान, विधि, वाणिज्य, सामाजिक विज्ञान, मानव संसाधन, शिक्षा आदि अनेक विषयों के साथ है।

यह भी ध्यातव्य है कि प्रशासन में भी हिंदी का प्रयोग मौलिक रूप से नहीं हो रहा बल्कि यह अंग्रेजी के अनुवाद के रूप में प्रयुक्त हो रही है। यह दुःखद स्थिति है कि सार्वदेशिक प्रकृति के होते हुए, समूचे भारत की संपर्क भाषा की भूमिका निभाते हुए और देश की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति में सक्षम होते हुए भी हिंदी को राजभाषा का पूरा दर्जा नहीं मिला हुआ है, राष्ट्रभाषा की बात करना तो अलग है।

राजभाषा के संवर्धन के लिए अनुवाद की विशेष भूमिका रहती है। इस कार्य में अनुवाद की भाषा ऐसी सुबोध, सरल और सहज हो कि वह उस पाठक के लिए संप्रेषणीय हो जिसे स्रोत भाषा का ज्ञान न हो। अनुवाद की भाषा में जो दुरूहता होती है, उसका मुख्य कारण मूल पाठ की वाक्य-संरचना पर ध्यान तो दिया जाता है किंतु उसके कथ्य या भाव पर ध्यान नहीं दिया जाता। वास्तव में मूल भाषा (अर्थात स्रोत भाषा) और अनूदित भाषा (अर्थात लक्ष्य भाषा) की संरचना अलग होती है। इसलिए स्रोत भाषा की संरचना का अनुकरण करने की अपेक्षा उसकी भाव-योजना पर अधिक बल देना चाहिए। इससे अनुवाद की भाषा सहज, सुबोध और प्रवाहपूर्ण हो जाती है और अनूदित सामग्री पठनीय और बोधगम्य हो जाती है। अंग्रेजी की प्रकृति कर्मवाच्यपरक (Passive Voice) जबकि हिंदी की प्रकृति कर्तृवाच्यपरक (Active Voice) है। उदाहरण के लिए;

1. The explanation submitted by Shri Subodh Kumar has not been found satisfactory.
2. The bill was passed by the Parliament.

अनुवाद की भाषा में इन दोनों अंग्रेजी वाक्यों का हिंदी रूप प्रायः इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है :

1क. ''श्री सुबोध कुमार द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं पाया गया।''

2क. ''संसद द्वारा विधेयक पारित किया गया।''

ये दोनों वाक्य हिंदी की प्रकृति के अनुरूप नहीं है। हिंदी की प्रकृति के अनुरूप ये वाक्य इस प्रकार होने चाहिए;

1ख. श्री सुबोध कुमार ने जो स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है वह संतोषजनक नहीं पाया गया।
2ख. संसद में विधेयक पारित हुआ (या किया गया)। / संसद ने विधेयक पारित किया।

इस प्रकार अनुवाद करते हुए लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार वाक्य-रचना की अपेक्षा की जाती है और उसी की अभिव्यक्ति शैली पर ध्यान दिया जाता है। संसदीय वाक्य का एक उदाहरण देखिए :

- That this House do agree with the Ninth Report of the Committee on Private Member's Bills and Resolutions presented to the House on the 20th November, 1980.

हिंदी अनुवाद :

- 'कि यह सभा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के नौवें प्रतिवेदन से, जो 20 नवंबर, 1980 को सभा में प्रस्तुत किया गया था, सहमत है।

यह अनूदित वाक्य राजभाषा हिंदी की प्रकृति के अनुरूप नहीं है। इसमें विशेषण उपवाक्य मूल वाक्य के अंत में आएगा। इसका सही वाक्य इस प्रकार होगा :

- 'कि यह सभा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के उस नौवें प्रतिवेदन से सहमत है जो 20 नवंबर, 1980 को सभा में प्रस्तुत किया गया था।

विधि की वाक्य-संरचना की अपनी विशिष्टता है। कई बार इसमें ऐसा वाक्य-विन्यास होता है, जो जन-सामान्य के लिए दुर्बोध होता है। उदाहरण के लिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 300 और धारा 302 का अनुवाद इस प्रकार है :

Whoever commits murder shall be punished with death or imprisonment for life and shall also be liable. (302)

हिंदी अनुवाद :

- 'जो कोई व्यक्ति हत्या और अपराध कारित करेगा, उसे मृत्यु या आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित भी किया जाएगा।
- Culpable homicide is not murder or the offender whilst deprived of the power of self control by grave and sudden provocation, causes the death of the person who gave the provocation or cause the death of any person by mistake or accident. (300)

हिंदी अनुवाद :

- गंभीर एवं अचानक प्रकोपन आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है। यदि अपराधी उस समय जबकि वह गंभीर एवं अचानक प्रकोपन से आत्म-संयम खोकर उस व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दे, जिसने उसे प्रकोपित किया हो या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु भूल या दुर्घटनावश कारित करे।

यहाँ 'हत्या या अपराध कारित करेगा' अथवा 'मृत्यु कारित कर दे' जैसी अभिव्यक्तियाँ समान प्रयोग की हिंदी की प्रकृति से भिन्न है। यह बात सही है कि कई बार पारिभाषिक शब्द कठिन लगते हैं किंतु वे अल्प प्रयोग और अभ्यास की कमी के कारण हमें ऐसे लगते हैं।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि अंग्रेजी वाक्य-संरचना हिंदी की वाक्य-संरचना से भिन्न है। कई बार अंग्रेजी के वाक्य बहुत लंबे और जटिल होते हैं, जबकि हिंदी की प्रकृति के अनुसार छोटे और सरल वाक्यों की प्रायः अपेक्षा रहती है। छोटे वाक्यों से अर्थ स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए :

- The matter has been examined in this office in consultation with the Ministry of Home Affairs and it has been decided that employment of casual hands to do clerical work or stenographic work on daily wages is irregular and should not in any circumstances be resorted to and the practice of employing III staff on daily wages should be terminated forthwith.

हिंदी अनुवाद :

- गृह मंत्रालय से परामर्श करके इस कार्यालय में इस मामले की जाँच की गई है और यह निर्णय लिया गया कि अनियत कर्मचारियों की दैनिक मजदूरी पर लिपिक या आशुलिपिक के कार्य के लिए अनियमित है तथा इसे किसी भी परिस्थिति में नहीं किया जाना चाहिए और तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों को दैनिक मजदूरी पर लगाने की रीति खत्म कर देनी चाहिए।

उपर्युक्त अनूदित वाक्य हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। यदि इसे तीन-चार वाक्यों में विभाजित किया जाए तो यह अधिक संप्रेषणीय होगा। बार-बार, तथा, अथवा, और लगाने से वाक्य-रचना जटिल हो जाती है जिससे कई बार अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता।

कई पारिभाषिक शब्दों के अनेक पर्याय होते हैं जो संप्रेषणीयता में बाधा डालते हैं : जैसे

Director = निदेशक, निर्देशक, संचालक, दिग्दर्शक

Report = प्रतिवेदन, आख्या, रपट, रिपोर्ट

एक ही अनुवाद में एक पारिभाषिक शब्द के विभिन्न पर्याय देने से भ्रम पैदा होने की संभावना रहती है। केंद्र और राज्य सरकारों में अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं जो भ्रमात्मक स्थिति पैदा करते हैं। Director शब्द के लिए केंद्र में हिंदी शब्द 'निदेशक' का प्रयोग होता है जबकि मध्य प्रदेश में 'संचालक' का। इसी प्रकार, अंग्रेजी के Report शब्द के लिए केंद्र में हिंदी शब्द 'प्रतिवेदन' या 'रिपोर्ट' प्रयुक्त होता है और उत्तर प्रदेश में 'आख्या'। वास्तव में शब्दों में एकरूपता बनाए रखने से भाषा सुबोध और स्पष्ट होती है और शब्दों का मानक रूप सर्वस्वीकृत होता है।

सरल, सुबोध, स्वाभाविक और प्रवाहयुक्त भाषा से अभिप्राय है -- जिसकी वाक्य-रचना सीधी और सुलझी हुई हो और उसमें किसी प्रकार का आडंबर न हो तथा वह अलंकारों से बोझिल न हो। अनुवाद की भाषा में शब्दों में समरूपता और एकरूपता से राजभाषा में सहजता और सुबोधता लाई जा सकती है। राजभाषा में कार्य करते हुए हमें अनुवाद पर आश्रित नहीं होना चाहिए बल्कि भाषा को सर्वजन-सुलभ और व्यावहारिक बनाने के लिए मूल रूप से काम करना चाहिए। उदाहरण के लिए, कई बार सड़कों पर 'सड़क निर्माणाधीन है' अथवा 'कार्य प्रगति पर है' जैसे वाक्य लिखे मिलते हैं जो वस्तुतः Road is under construction अथवा The work is in progress के अनूदित रूप हैं। अनुवाद की यह भाषा सामान्य व्यक्ति के लिए बोधगम्य नहीं है। इनके स्थान पर यदि 'सड़क बन रही है' या 'सड़क का निर्माण हो रहा है' अथवा 'कार्य हो रहा है' या 'काम चल रहा है' जैसे वाक्य अधिक बोधगम्य हैं।

कई बार मूल पाठ की प्रकृति को समझे बिना उसके शब्दों के पर्याय ढूँढने का प्रयास रहता है और उन पर्यायों के सहारे अनुवाद किया जाता है जो जटिल और कठिन होता है। अगर मूल पाठ के एक-एक वाक्य के बजाय उसके पूरे पैराग्राफ को पढ़ लिया जाए तो और फिर उस समझी हुई बात को अपने शब्दों में स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किया जाए तो अनुवाद की भाषा सहज और संप्रेषणीय हो पाएगी। यदि इन बातों का पालन नहीं किया जाता तो राजभाषा हिंदी के साथ पूरा न्याय नहीं हो पाएगा और हिंदी का विकास भी नहीं हो पाएगा। राजभाषा हिंदी के सामने इसी प्रकार की अनेक चुनौतियाँ हैं जो इसके सरल, सहज और स्वाभाविक रूप में विकार पैदा कर रही हैं। यहाँ यह बताना असमीचीन न होगा कि जितना संभव हो राजभाषा हिंदी को अनुवाद की भाषा से दूर रखा जाए। राजभाषा हिंदी का कार्यान्वयन मूल रूप में जितना अधिक होगा उसका विकास उतना ही अधिक होगा।

❑

प्रो. गजानन चव्हाण

अनुवाद में शैली का निर्वाह

शैली का संबंध यहाँ भाषा के साथ है। कोई भी भाषा लोगों के द्वारा प्रयोग में लाई जाती है। वह भिन्न-भिन्न कालों, अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों तथा समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों में प्रयुक्त होती है। भाषा के प्रयोजन भी अलग-अलग होते हैं। भाषा-प्रयोग संबंधी इन भिन्नताओं के कारण एक ही भाषा के कई रूप बनते हैं। जैसे, भाषा का ऐतिहासिक रूप, भौगोलिक रूप (बोली), सामाजिक रूप (समाज बोली), तथा प्रयोजनमूलक भाषा रूप (प्रयुक्ति)। कुछ लोग इन भाषा रूपों को 'शैली' का अभिधान देते हैं, जो सही नहीं है। वस्तुतः शैली का संबंध भाषा की संरचनागत इकाइयों (शब्द, पद, वाक्य-विन्यास आदि) के चयन के साथ है।

भाषा की क्षेत्रानुसार विशिष्टता

हम जीवन में सभी व्यवहारों, प्रसंगों और प्रयोजनों के लिए एक ही प्रकार के शब्दों, पदों तथा वाक्य प्रकारों का प्रयोग नहीं करते। लिखने की भाषा की शब्दावली और वाक्य-विन्यास बोलने की भाषा की शब्दावली तथा वाक्य विन्यास से भिन्न होता है। लेखन में भी कार्यालयी पत्राचार की शब्दावली, वाक्य-विन्यास आदि विज्ञान की शब्दावली और वाक्य-विन्यास से भिन्न होते हैं। कार्यालयी पत्राचार की भाषा में विशिष्ट शब्दावली होती है। जैसे, संस्तुत, संस्तुति, अग्रेषित, टिप्पणी, मसौदा, आवती, पावती आदि। ये सब पारिभाषिक शब्द हैं। हम इनका प्रयोग दूसरे विषय-क्षेत्र में नहीं करते। कार्यालयी पत्राचार की भाषा की अपनी शाब्दिक अन्विति भी होती है; जैसे, 'मसौदे' की सहमति दी जाती है; 'स्पष्टीकरण' माँगा जाता है, मामले का सार तैयार किया जाता है। कार्यालयी पत्राचार की भाषिक संरचना में वाक्य-विन्यास कर्मवाच्य प्रधान रहता है। ये विशेषताएँ कार्यालयी भाषा प्रयुक्ति को दूसरी प्रयुक्ति से भिन्न बनाती हैं।

वहीं दूसरी ओर, विज्ञापन की भाषा तत्सम-प्रधान नहीं होती और उनमें पारिभाषिक शब्दावली का बाहुल्य नहीं होता। आज्ञार्थक वृत्ति के प्रयोग ज्यादा होते हैं। उदाहरण के लिए, 'माँगकर नहीं, खरीदकर पढ़िए', 'जल्द आराम के लिए एनॉसिन लीजिए'। विज्ञापन की भाषा में क्रिया का आदरार्थक रूप प्रयुक्त होता है। इस भाषा में निश्चयार्थक वाक्य-रचना (हारलिक्स अतिरिक्त शक्ति देता है); विरोध दिखाकर वस्तु का महत्व सिद्ध करना (कम खर्च, अधिक लाभ); अतिशयोक्तिपूर्ण वाक्य (आज का सबसे अधिक शक्तिशाली कृमिनाशक-सावलान); तुकांत प्रयोग (मुक्ता पढ़िए,

आगे बढ़िए); पदार्थ की आवृत्ति (वज्रदंती, वज्रदंती, टूथ पाउडर, टूथपेस्ट) आदि अन्य विशेषताएँ भी होती हैं।

इसी प्रकार विज्ञान की भाषा साहित्य की भाषा से भिन्न होती है। विज्ञान की भाषा में वस्तुनिष्ठता अधिक होती है। यह परिभाषा, विवेचन, विश्लेषण, कार्य-कारण संबंध, वर्गीकरण आदि प्रकार्यों को साधती है। इसमें पारिभाषिक शब्दों की भरमार होती है। इसमें प्रयुक्त शब्द एकार्थक होते हैं, अनेकार्थक नहीं। यह भाषा संदेश केंद्रित होती है। इसमें लेखक की अंतर्वृत्तियाँ जरा भी झाँकती नहीं। साथ ही विवेच्य वस्तु के लिए अन्य पुरुषवाचक सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है।

दूसरी ओर, साहित्य की भाषा, विज्ञान की भाषा से कई अर्थों में भिन्न होती है। यह भावाभिव्यंजक होती है। इसमें स्थान-स्थान पर लेखक तथा पात्रों की अंतर्वृत्तियाँ झलकती हैं। यह आनंदमय उपयोग की भाषा होती है। इसमें भाषा और उद्देश्य के बीच साधन-साध्य का संबंध न होकर दोनों अभिन्न हो जाते हैं। (वस्तुतः यही साहित्य है।) साहित्य में भाषा का प्रयोग भावों को उद्‌बुद्ध करने तथा पाठकों को आह्लादित करने के उद्देश्य से किया जाता है। यही कारण है कि इसमें सभी स्तरों पर विलक्षणता तथा नवीनता लाने का बराबर ध्यान रखा जाता है। विविधता, अनेकार्थकता, लाक्षणिकता, व्यंजकता, आलंकारिकता और चित्रात्मकता साहित्यिक भाषा की विशेषताएँ हैं।

शैली से अभिप्राय

हम देखते हैं कि कार्यालय, विज्ञापन, विज्ञान और साहित्य की भाषा एक-दूसरे से भिन्न है। एक ही भाषा में आने वाला यह अंतर चयनपूर्वक लाया जाता है। चयनपूर्वक का अर्थ है -- भाषा की शब्द, पद तथा वाक्य स्तरीय उपलब्ध इकाइयों में से विषय, प्रसंग और उद्देश्य के अनुकूल और उपयोगी इकाइयों का चयन करना। इस आधार पर कहा जा सकता है कि किसी भाषा के उस अंतर को शैली कहते हैं जो भाषा-प्रयोग के विषय-क्षेत्र, प्रसंग तथा प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए चयनपूर्वक किया जाता है। यह परिभाषा शैली की व्याप्ति निश्चित करने तथा शैली के प्रकारों का उल्लेख करने में सहायक होती है। इसके अनुसार हम मोटे शैली भेदों से लेकर सूक्ष्म शैली भेदों तक कई प्रकारों का उल्लेख कर सकते हैं। भाषा प्रयोग-क्षेत्र पर आधारित मोटे तौर पर शैली के भेद इस प्रकार हैं :

1. बोलचाल की भाषा शैली
2. कार्यालयी पत्राचार की भाषा शैली
3. विज्ञान की भाषा शैली
4. व्यापार-वाणिज्य की भाषा शैली
5. विज्ञापन की भाषा शैली
6. संचार माध्यमों की भाषा शैली
7. न्यायालय/विधि की भाषा शैली
8. साहित्य की भाषा शैली

इन भाषाशैलियों की अनुवादनीयता (अनूद्यता या अनुवादानुकूलता Translatability) एक जैसी नहीं होती। बोलचाल, संचार माध्यम तथा विज्ञापन की भाषा शैली को दूसरी भाषा (लक्ष्य

भाषा) में उतारना कठिन नहीं होता बशर्ते कि संबंधित स्रोत भाषा की सामग्री में भिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक शब्दावली, बोली, अपभाषा आदि का समावेश न हो। कार्यालय, विज्ञान, व्यापार-वाणिज्य, बैंक तथा न्यायालय की भाषा शैली का अनुवाद में निर्वाह करना कठिन होता है, क्योंकि इन प्रयुक्तियों में पारिभाषिक शब्दावली की भरमार होती है। वस्तुतः उक्त प्रयुक्तियाँ प्रधानतः पारिभाषिक शब्दावली के कारण ही साहित्यिक प्रयुक्ति से अपनी अलग सत्ताएँ रखती हैं। उदाहरण के तौर पर, विज्ञान की भाषा शैली को लें। रसायन विज्ञान से लेकर खगोल विज्ञान तक, सभी वैज्ञानिक विषयों की मूल सामग्री अंग्रेजी में है और वह पारिभाषिक शब्दों से भरी हुई है। भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण अभी तक पर्याप्त तथा अंतिम रूप में नहीं हुआ। अतएव अंग्रेजी से मराठी, हिंदी आदि भाषाओं में अनुवाद करते समय कठिनाई होती है।

साहित्यिक भाषा शैली और अनुवाद में उसका निर्वाह

साहित्यिक सामग्री के अनुवाद में मूल शैली को उतारना वैज्ञानिक सामग्री के अनुवाद की तुलना में कई गुना कठिन होता है। इसका मुख्य कारण साहित्य में अभिव्यक्ति पक्ष का महत्वपूर्ण होना है। कुछ आधुनिक शैली वैज्ञानिक तो यहाँ तक कहते हैं कि साहित्य में अभिव्यक्ति स्वयं संदेश का स्थान ग्रहण करती है। हमारे प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने भी इस बात की ओर संकेत किया था। इस संदर्भ में जयंत भट्ट का कथन उद्धृत करना अनुचित नहीं होगा। उन्होंने कहा है :

कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमः।
वचोविन्यास वैचित्रयं केवलमवधार्यताम्।।

साहित्य में हर बार विषय तथा कथ्य की नूतनता संभव नहीं। उक्ति वैचित्रय ही साहित्य को नयापन प्रदान करता है। यही कारण है कि कथन की भंगिमा को साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

कथन के ढंग को नया रूप देने में दो तरीके अपनाए जाते रहे हैं। एक, अभिव्यक्ति के पर्याय गुच्छों में से उपयुक्त का चयन करना (जिसे 'व्यक्ति-निर्वाचित शैली' कहा जाता है) और दूसरा, चयन के साथ-साथ भाषा की व्यवस्था को तोड़कर उसे वैयक्तिक वैशिष्ट्य से युक्त करना। इसे 'व्यक्ति-निर्मित शैली' या 'नवप्रवर्तित शैली' कहा जाता है। शैली का नवप्रवर्तन सामर्थ्यशाली साहित्यकारों द्वारा ही संभव होता है। यह हर किसी साहित्यकार के बस की बात नहीं। अतः साहित्य में व्यक्ति-निर्वाचित शैली की तुलना में नवप्रवर्तित शैली का अनुपात कम देखा जाता है। हिंदी में शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, निराला, फणीश्वरनाथ रेणु, कन्हैयालाल मिश्र, अज्ञेय नवप्रवर्तित शैलियों के निर्माता माने जाते हैं।

साहित्य की भाषा में शैली निर्माण की दृष्टि से अनंत संभावनाएँ होती हैं। परिणामस्वरूप साहित्य में शैली के नाना भेद मिलते हैं। गद्यत्व और पद्यत्व, साहित्यिक विधा, विधा के प्रमुख तत्व, रस, गुण, प्रसंग, उद्देश्य आदि आधारों पर साहित्यिक भाषा शैली के सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकार

मिलते हैं। उदाहरण के लिए, कथा साहित्य के अंतर्गत उपन्यास की भाषा शैली की अपनी अलग विशेषता होती है। उपन्यास की भाषा शैली में और नीचे उतरने पर हमें ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, जीवनीपरक उपन्यास आदि अलग-अलग शैलियों के दर्शन होंगे। अधिक गहराई में उतरने पर उपन्यास के तत्वों की अपेक्षा से निर्मित शैली-भेदों (कथानक की शैली, चरित्र चित्रण की शैली, वातावरण की शैली आदि) का परिचय होगा। इसी तरह, लेखक के नाम से (प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि की शैली), कृति के नाम से (जैसे, 'गोदान' की शैली, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की शैली) शैली का उल्लेख कर उसकी विशिष्टता का परिचय दिया जाता है भाषा के विशिष्ट उपकरणों पर बल देने से बनाई हुई भाषा शैलियाँ भी साहित्य में मिलती हैं। जैसे, शब्द शैली, वाक्य शैली, प्रतीकात्मक शैली, लाक्षणिक शैली, व्यंजनात्मक शैली, आलंकारिक शैली, मुहावरेदार शैली आदि। हर साहित्यिक कृति इनमें से किसी न किसी प्रकार के शैली भेद का वहन करती है। इसलिए मूल शैली का निर्वाह अनुवाद की सफलता का स्वाभाविक निकष है।

क्या अनुवाद में शैली का निर्वाह करना साहित्य की हर कृति तथा साहित्यिक कृति के हर प्रसंग के संबंध में संभव है? यह प्रश्न मूल साहित्य की प्रकृति और विधा, दो भाषाओं की संरचना, दो भाषायी समुदायों की संस्कृति, दो भाषाओं की साहित्यिक परंपरा, मूल साहित्य में प्रयुक्त ऐतिहासिक तथा भौगोलिक भाषा रूप, अनुवादक की क्षमता आदि कई घटकों से संबंध रखता है। ये सभी घटक अनुवाद में शैली निर्वाह को प्रभावित करते हैं। यहाँ पर साहित्यिक अनुवाद में शैली निर्वाह विषयक सभी समस्याओं को उठाना संभव नहीं। केवल उन्हीं समस्याओं पर प्रकाश डालना प्रसंगोचित होगा जो अनुवाद की दृष्टि से जटिल ही नहीं, सार्वत्रिक महत्व की भी हैं :

1. स्रोत तथा लक्ष्य भाषा में संरचनागत अंतर और अनुवाद की समस्या

यह तथ्य सर्वविदित है कि हर भाषा की अपनी अलग व्याकरणिक संरचना होती है। दो भाषाओं का संरचनागत अंतर अनुवाद में समस्या पैदा करता है। उदाहरण के लिए, मराठी और हिंदी की लिंग व्यवस्था में अंतर होने से कभी-कभी सरल आशय और सरल शैली की सामग्री को लक्ष्य भाषा में उतारना असंभव हो जाता है। प्रसिद्ध मराठी कवि विट्ठल वाघ के काव्य-संग्रह 'पाऊस पाणी' की कविता के उदाहरण से यह बात स्पष्ट होगी। उनकी काव्य पंक्तियाँ हैं :

पाऊस मातीच्या जीवाचा सजण
पाऊस मातीच्या गळयालीत हात
पाऊस सजण तरण्या मातीचा
पाऊस मातीला गाठतो गढीत.

यहाँ 'पाऊस' और 'माती' दोनों में प्रिय-प्रेयसी का संबंध कल्पित किया गया है। मराठी

में 'पाऊस' पुल्लिंग और 'माती' स्त्रीलिंग होने से कविता में प्रिय-प्रेयसी के रूपक का अच्छा निर्वाह हुआ है; लेकिन हिंदी में 'पाऊस' के लिए अधिकतर शब्द (बारिश, वर्षा, बरसात) स्त्रीलिंग हैं। अतः मूल कविता में कल्पित 'पाऊस-माती' का मधुर रिश्ता अनुवाद में लाया नहीं जा सकता। ऐसे-वैसे खींचतान कर शब्दानुवाद करना पड़ेगा, जिससे मूल कविता का सारा सौंदर्य चौपट हो जाएगा।

2. बोली तथा क्षेत्रीय भाषा रूपों से युक्त शैली के अनुवाद की समस्या

विविधता साहित्यिक भाषा की अनन्य विशेषता है। साहित्य में भाषा की विविध प्रयुक्तियों, बोलियों, क्षेत्रीय रूपों के प्रयोग का काफी अवसर रहता है। लेकिन यह विविधता, विशेषकर बोली तथा स्थानीय भाषा-प्रयोग विषयक विविधता, अनुवाद की दृष्टि से एक जटिल समस्या बनकर सामने आती है। आंचलिक उपन्यास इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष को सजीव साकार किया जाता है। इस मूर्तता का असली साधन होता है -- वहाँ का भूगोल और जनजीवन। इसके दर्जनों पात्र अंचल को जीवंत बनाते हैं और पात्रों को जीवंत बनाती हैं वहाँ की बोली तथा भाषा का क्षेत्रीय रूप। हिंदी में फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' इसका अच्छा उदाहरण है। इसमें लेखकीय निवेदन की भाषा भले ही मानक खड़ी बोली हिंदी हो, इसके अधिकतर पात्र स्थान-स्थान पर पूर्णिया की हिंदी-मैथिली का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। पूर्णिया के मेरीगंज अंचल का भौगोलिक वातावरण प्रकृति, कृषि-जीवन, आदिवासी जीवन, सामाजिक वर्ग, जात-पाँत, उनके आपसी संघर्ष, रीति-रिवाज, रहन-सहन, अंध श्रद्धा, लोक-कला, धार्मिक अनुष्ठान, बीमारी, इलाज, राजकीय हलचल, विकास के स्पंदन -- इन सबका जीवंत अंकन करने के लिए 'रेणु' ने पग-पग पर हिंदी भाषा का स्थानीय रूप रखा है। लोक-कलाओं की प्रस्तुति में तो मैथिली का प्रयोग है ही; साथ ही, जो पात्र खड़ी बोली हिंदी में बात करते हैं वे भी अंचल विशेष के शब्दों तथा हिंदी के शब्दों के बिगड़े हुए रूपों को अपनाते हैं। भाषा के विलक्षण प्रयोगों के संदर्भ में 'मैला आँचल' की टक्कर का दूसरा उपन्यास हिंदी में नहीं है। इसमें 'व्यक्ति-निर्वाचित' और 'व्यक्ति-निर्मित' दोनों प्रकार की भाषा शैलियों का अनूठा प्रयोग मिलता है। 'रेणु' ने अंचल विशेष को सजीव, साकार करने के उद्देश्य के अनुरूप भाषायी इकाइयों का चयन ही नहीं किया, बल्कि स्थानीय भाषा-प्रयोग के ढंग पर नई अभिव्यक्तियाँ भी गढ़ी हैं। लेकिन 'मैला आँचल' की यह भाषागत शक्ति ही अनुवाद के लिए बड़ी चुनौती बन गई। 'मैला आँचल' की कुछ भाषिक प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं :

बोली का प्रयोग : बिछावन पर लेटकर डॉक्टर सोचता है -- कोमल गीतों की पंक्तियाँ! अपभ्रंश शब्द भी कितने मधुर लगते हैं। -- 'पिया भइले डुमरी के फूल रे पियवा भइले। -- चाँद बयरि भेल बादल, मछली बयरि महाजाल, तिरिया बयरि दुहु लोचन हिरदय के भेद बनाए। -- भोंमरा-भोंमरी-रोई-रोई कजरा दहायल, घामे तिलक बहिगेल। -- चान के उगयत देखन सजनि गे-लट धोए गइली हम बाबा की पोखरिया-पोखरि में चान केलि करे।' (मैला आँचल, पृ. 83-84)

स्थानीय शब्द : हँसेरी (बलवा), मुरझल (चँवर), छापी (तसवीर), भालर (पत्ता), करताल (टुहरी), भकतिया, ढोलहा (मुनादी), जोगीड़ा, फगुआ, खम्मार, बिकटा, जाट-जट्टिन, बिलटा, भँडोवा, समदाऊन, घोड-करैत, बुनरू, चिप्पी (राशन), डूलमाल (आंदोलन) इत्यादि।

हिंदी शब्दों के बिगड़े हुए रूप : नीमक (नमक), उतसव (उत्सव), विलैत (विलायत), जोतखी (ज्योतिषी), करोधी (क्रोधी), संघर्ख (संघर्ष), गिरिफ्फ (गिरफ्त), बेकूफ (बेवकूफ), खपसूरत (खूबसूरत), धेयान (ध्यान), गियानी (ज्ञानी), किरांती (क्रांति), सेताराम (सीताराम), जमाहिरलाल (जवाहरलाल), जयपरगास (जयप्रकाश), नखलौ (लखनौ), भगमान (भगवान), आरजाबरत (आर्याव्रत) इत्यादि।

कृत्रिम भाषा : यह है कचहरी। यहीं कर-कचहरी में लोग मर-मुकदमा करने के लिए आते हैं। इसी तरह उपसर्ग लगाकर सब बोलते हैं -- कर-कचहरी, खर-खजाना, गर-गरामित, घर-घरहट, चर-चुमौना, जर-जमीन, पर-पंचायत, फर-फौजदारी, वर-बरात, मर-मुकदमा या मर-महाजन। (मैला आँचल, पृ. 87)

अपभाषा : नागा बाबा जब गुस्सा होते हैं तो मुँह से अश्लील-से-अश्लील गालियों की झड़ी लग जाती है। -- आते ही लछमी दासिन पर बरस पड़े -- ''तेरी जान को मच्छड़ काटे। हरामजादी। रंडी! तै समझती क्या हैरी? ऐं, दुनियाँ को तैं अंधा समझती है? बोल! -- छिनाल! तैं आचारज गुरू को गाली देती है? तेरे मुँह में कुल्हाड़ी का डंडा डाल दूँ, बोल! साली, कुत्ती! (मैला आँचल, पृ. 90-91)

विदेशी शब्दों के बिगड़े हुए रूप : डलेबर (ड्राइवर), बैकाठ (बायकॉट), लकचर (लेक्चर), मिटिन (मीटिंग) इत्यादि।

उच्चारण सादृश्य के आधार पर शब्द की अजीब व्युत्पत्ति के प्रयोग : इनकिलाब जिंदाबाद -- इनकिलाब जिंदाबाघ; इनकिलास जिंदाबाद; इनकिलास जिंदाबात; अनशन-जनसन, हिंसावाद-हिंसाबात, वाईसचैरमन-भैंसचरमन।

आँचलिक उपन्यास में दिखाई देने वाली इन प्रवृत्तियों से युक्त विविधतापूर्ण भाषा-शैली को अनुवाद में उतारना टेढ़ी खीर है। प्रमुख समस्या यह उपस्थित होती है कि बोली वाले अंश का अनुवाद लक्ष्य भाषा की किस बोली में किया जाए? किसी एक बोली में अनुवाद करने पर अनुवाद के पाठक कम नहीं होंगे? क्या परभाषी अनुवादक बोली में अनुवाद कर सकता है? क्या वह लक्ष्य भाषा के ग्रामीण पर्यायों को जानता है? परभाषी अनुवादक ने तो लक्ष्य भाषा द्वितीय भाषा के रूप में तथा औपचारिक शिक्षण क्रम में सीखी हुई होती है। उसे लक्ष्य भाषा की बोलियों, उपबोलियों, स्थानीय भाषा रूपों, भ्रष्ट शब्द रूपों, मुहावरों-कहावतों, गाली-गलौजों आदि का बोध ही नहीं होता है। परिणामतः आँचलिक उपन्यास के अनुवाद में या तो मानक भाषा का प्रयोग करना पड़ता है या फिर कुछ अंशों को ज्यों का त्यों रखना पड़ता है या कुछ को छोड़ देना पड़ता है। इससे उपन्यास की पूरी बुनावट ढीली पड़ जाती है। उचित भाषा-पर्याय के अभाव में अनूदित उपन्यास निष्प्राण-सा लगता है। अनुवाद में समतुल्यता नहीं आ पाती।

3. अनुकरणनात्मक शब्द और शैली-निर्वाह

कुछ साहित्यकार रंग और रूप, स्पर्श और गंध, ध्वनि और ताल के संबंध में शाब्दी कथन न कर उनकी प्रतीति कराने वाली अनुरूप शब्द-योजना पर बल देते हैं। वे प्रकृति की अनेकानेक ध्वनियों, बारिश के प्रकारों, पंछियों की बोलियों, प्राणियों की आवाजों, यंत्रों की खड़खड़ाहटों, कारखानों के भौंपुओं, वाहनों की कनफट ध्वनियों को ही नहीं, बंदूक, थप्पड़, तमाचे, हंटर, बर्तन, गहने तथा वाद्यों की ध्वनियों आदि को सटीक शब्दों में पकड़ते हैं। विशेषकर वातावरण प्रधान साहित्य में अनुकरणनात्मक शैली को देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए,

''रात में मेंढकों की टरटराहट के साथ असंख्य कीट-पतंगों की आवाज शून्य में एक अटूट रागिनी बजा रही है -- टर्र! मेंक् टर्ररर -- मेंक्। -- झि-झि-चि-फिर-फिर्र-सि, किटिर-किटर। झि-टर्र--!'' (मैला आँचल, पृ. 182)

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या अनुवाद के अनुरणनात्मक भाषा शैली को संरक्षित करना संभव है? कहा जाता है कि वाद्यों की ध्वनियों का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं। वे ज्यों की त्यों रखी जानी चाहिए। यह सही भी है; क्योंकि संगीत का अनुवाद नहीं होता। लेकिन अन्य ध्वनियों की प्रतीति कराने वाले अनुरणनात्मक शब्दों, संज्ञाओं, क्रिया विशेषणों, क्रियाओं के लिए लक्ष्य भाषा में विद्यमान समतुल्य पर्याय चुनने ही होंगे। इस कार्य में स्वभाषी अनुवादक भी जब तक लोक-जीवन के साथ घुल-मिल नहीं जाता और लक्ष्य भाषा में समग्र तथा स्थिर क्षमता प्राप्त नहीं करता तब तक वह अनुवाद में अनुरणनात्मक शब्दों के लिए उपयोगी पर्यायों का चयन नहीं कर सकता। यही कारण है कि स्वभाषी, अनुवाद होते हुए भी मैला आँचल के मराठी अनुवाद में ऐसे कई शब्द छोड़ दिए गए हैं। जैसे,

हिंदी	**मराठी अनुवाद**
• लेकिन फिर वही सरसराहट।	: पण पुन्हा तोच भास होत होता.
• बिजली चमकी और हरहराकर वर्षा होने लगी।	: बीज चमकली आणि पाऊस पडायला लागला.
• कोठी के बाग में झरझराहट बंद नहीं हुई।	: कोठीच्या बागेल पावसाचं टपकणं कधी बंद झालंच नाही.
• छरछर बहती खून की धारा को देखकर	: रक्त स्राव बघून

4. सांस्कृतिक भिन्नता और अनुवाद में शैली निर्वाह

साहित्य के अंतर्गत शैली विशेष की बुनावट में शब्द वर्ग का विशेष महत्व होता है। हिंदी और मराठी संदर्भ में देखा जाए तो स्रोत के आधार पर तत्सम, तद्भव आदि शब्द वर्ग हैं। रचना के आधार पर सामासिक, असामासिक आदि शब्द वर्ग हैं। शब्द विशेष के आधार पर सांस्कृतिक, धार्मिक आदि, अर्थ के आधार पर अभिधात्मक, लाक्षणिक, प्रतीकात्मक आदि वर्ग किए जाते हैं। स्रोत और लक्ष्य भाषा-भाषी समुदायों की जीवन-पद्धतियों में भौगोलिक और

धार्मिक कारणों से अंतर हो तो उनकी सांस्कृतिक शब्दावली में भी अंतर आता है। ऐसी स्थितियों में सांस्कृतिक शब्दावली बहुल भाषा-शैली को अनुवाद में सरक्षित करना कठिन हो जाता है। यह कठिनाई भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद के संदर्भ में कम और विदेशी भाषाओं में अनुवाद के संदर्भ में अधिक मात्रा में आती है। हमारे यहाँ राम, सीता, विष्णु, लक्ष्मी, शंकर, पार्वती, कामदेव, रति, विश्वामित्र, मेनका आदि मात्र व्यक्ति नहीं हैं। दीर्घकाल से चली आ रही अर्थ परंपरा के कारण ये किसी मूल्य अथवा अवधारणा के प्रतीक बने हुए हैं। साहित्य में कई अवसरों पर इनका प्रयोग प्रतीकार्थ में ही होता है। ऐसे प्रसंगों का किसी विदेशी भाषा में अनुवाद करते समय ठीक इसी अर्थ को वहन करने वाला सांस्कृतिक शब्द पर्याय नहीं मिलता। परिणामतः शब्दस्तरीय शैलीगत विशेषता का निर्वाह करना असंभव होता है। इसका अच्छा उदाहरण है -- हमारे साहित्य में मनोज (कामदेव) शब्द का प्रयोग। तुलसीदास की प्रसिद्ध काव्य पंक्तियाँ हैं :

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि! कइहु को अहहि तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मनमहँ मुसुकानी।।

प्रस्तुत पंक्तियों में मनोज अर्थात् कामदेव के साथ दो अर्थ जुड़े हुए हैं -- प्रेम के देवता और सौंदर्य के प्रतिमान। अंग्रेजी में 'क्यूपिड' प्रेम के देवता जरूर हैं, लेकिन सौंदर्य के प्रतिमान नहीं। अतः अंग्रेजी अनुवाद में 'क्यूपिड' शब्द मूल मनोज या कामदेव का समग्र अर्थ नहीं दे पाता। दूसरे शब्दों में ''साहित्यिक सोद्देश्यता की दृष्टि से 'कामदेव' तथा 'क्यूपिड' में समतुल्यता न होने के कारण दोनों में साहित्यिक, संस्कृतिगत अंतर है जो साहित्यिक शैली का प्रश्न है।'' कहना नहीं होगा कि भारतीय भाषाओं में साहित्य में रामायण, महाभारत, पुराण आदि के प्रसंगों पर आधारित साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में यह समस्या बराबर आती रहती है।

काव्यानुवाद में शैली निर्वाह : कठिनता का स्तर

साहित्य की विधाओं में कविता एक विशिष्ट विधा हे। इसके कई कारण हैं। कविता में भावों की प्रधानता होती है। अच्छी कविता कथन नहीं करती। वह कम कहती और अधिक ध्वनित करती है। अर्थात् कविता में अनकहा ज्यादा रहता है। कविता में प्रयुक्त शब्द अनेकार्थक होते हैं, उसमें कई पद लुप्त होते हैं। अतएव उसमें एकोन्मुख अर्थ रेखा न होकर अनेकोन्मुख अर्थ रेखाएँ (range of meaning) होती हैं। कविता में पदों का क्रम भी वही न होता जो गद्य में होता है। कविता में उत्कट भावों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति होती है। इन सभी वैशिष्ट्यों से युक्त कविता जब भिन्न-भिन्न कोटियों की क्षमता और संवेदनशीलता रखने वाले पाठकों से रूबरू होती है, तब वे पाठक कविता में निहित अनेकार्थ-व्यंजकता के कारण तथा अपनी समझ एवं संवेदनशीलता के बल पर उसे अलग-अलग अर्थों में ग्रहण करते हैं। हर पाठक उसमें से एक कविता निकालता है जो उसकी अपनी कविता होती है। इसी अर्थ में कहा जाता है कि 'कविता एक संभावना होती है।' कविता में शैली के दोनों सूत्रों-चयन और विचलन का उपयोग करने के लिए काफी अवसर रहता है। यही कारण है कि कविता में अन्य विधाओं की तुलना में शैली

की विविधता और सूक्ष्मता दोनों विद्यमान रहते हैं। कविता की यह विशिष्टता अनुवाद में शैली-निर्वाह की दृष्टि से कई समस्याएँ पैदा करती हैं। कुछ प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैं :

क) काव्यानुवाद में आलंकारिक शैली का निर्वाह

कविता में अलंकारों की योजना भले ही आम बात हो, अनुवाद में उसका निर्वाह कठिन कर्म है। कई बार ऐसा होता है कि मूल सामग्री में विद्यमान आलंकारिक शैली लक्ष्य भाषा की दृष्टि से अनुकूल नहीं पड़ती अर्थात् लक्ष्य भाषा में उस प्रकार की प्रवृत्ति न होने से लक्ष्य भाषा के पाठकों के लिए अनुवाद अस्वाभाविक लग सकता है। फिर भी मूल शैली को रक्षित करने अथवा पाठकों को उसका अहसास दिलाने के लिए अलंकारों का अनुवाद करना जरूरी होता है। कई बार आलंकारिक अभिव्यक्तियों के लिए लक्ष्य भाषा में समतुल्य पर्याय नहीं मिलता। शब्दालंकारों के बारे में प्रायः ऐसा होता है। उदारहणार्थ के लिए, बिहारी का निम्नलिखित दोहा और उसका मराठी अनुवाद देखिए :

हिंदी : कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
या खाय बौराय जग वा पाए बौराय।। (बिहारी)

मराठी : शतपट कटकाहन ते मादक सुवर्ण प्रेम।
गिळता माजवि धतूरा, धुंदवि बधता हेम।। (राजा बढे)

मूल हिंदी दोहे में 'कनक' शब्द की भिन्न अर्थ में आवृत्ति होने से यमक अलंकार है। मराठी अनुवाद में मूल अर्थ तो आ गया, लेकिन यमक अलंकार गायब है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अनुवाद में शब्दालंकार को ले आना सर्वत्र ही असंभव होता है।

प्रायः देखा जाता है कि लक्ष्य भाषा में ऐसे शब्द मिलना मुश्किल होता है जो स्रोत भाषा के शब्दों के रूप में पक्ष से ही संवादित साधे और भिन्न अर्थ का चमत्कार भी दे। श्लेष अलंकार के संबंध में यह समस्या प्रायः उपस्थित होती है। जैसे :

हिंदी : चिरजीवी जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर।। (बिहारी)

यहाँ वृषभानुजा, हलधर शब्द के क्रमशः दो-दो अर्थ हैं -- राधिका तथा गाय, बलराम और बैल। अब मराठी अनुवाद देखें :

मराठी : चिरजीवी हो युगुल हे, जुळे स्नेह गंभीर।
हटवादी वृषभानुजा, हरधर अनुज अहीर।। (अनु. राजा बढे)

मराठी अनुवाद में भी श्लेष का चमत्कार लक्षित करने का प्रयास किया गया है, लेकिन मराठी में 'हलधर' शब्द का प्रचलन न होने से यह अस्वाभाविक लग सकता है। इस प्रकार के श्लेष का सौंदर्य विदेशी भाषाओं में संरक्षित करना तो असंभव ही है। अनुप्रास के बारे में भी यही समस्या होती है। मूल सामग्री में जिन व्यंजनों की आवृत्ति हुई होगी उनके समान व्यंजनों की आवृत्ति अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में संभव नहीं। इस संबंध में अनुवादकों को

एक बात हमेशा ध्यान में रखनी होगी कि काव्य में अलंकारों की योजना का सतही अर्थ न लिया जाए। अर्थात् अलंकार के लिए अलंकार वाली दृष्टि न रखी जाए। यह देखा जाए कि काव्य में अलंकार किस उद्देश्य से आया है। उदाहरण के लिए, किसी कविता में किसी वस्तु या पदार्थ की ध्वनि का अहसास दिलाने के उद्देश्य से यदि अनुप्रास और अनुरूप अनुकरणात्मक शब्द-योजना की हुई होगी तो अनुवाद में विशिष्ट व्यंजनों वाले अनुप्रास का आग्रह छोड़कर लक्ष्य भाषा में उपलब्ध उपयोगी तथा अनुकूल अनुकरणनात्मक शब्दों का चयन कर लक्ष्य भाषा के पाठकों को उस विशिष्ट ध्वनि की प्रतीति करानी चाहिए। उदाहरण के लिए, तुलसीदास की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियों के अंग्रेजी अनुवाद से यह बात स्पष्ट होती है :

हिंदी : कंकन किंकिन नुपूर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभि दीन्ही, मनसा बिस्व विजय कहुँ कीन्ही।।

अंग्रेजी : As the sound of the trimling of anklet and bangle, said Rama of Lakshaman, as thoughts 'gan to mingle, I hear sounds that seem, it is the love God who comes, with world-conquering conquering cymbals and beating of drums.

अब अर्थालंकारों के अनुवाद को लें। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों में संबंधित अलंकार के प्रयोग की परंपरा हो, दोनों में उसका समान स्थितियों में प्रयोग होता हो, दोनों में समान उपमान हों और दोनों समान भाव को व्यक्त करते हों तो लक्ष्य भाषा में अर्थालंकार को लाना कठिन नहीं होता। यही कारण है कि संस्कृत, हिंदी और मराठी साहित्य के परस्पर अनुवाद में अर्थालंकारयुक्त शैली का निर्वाह सहज संभव है। सूरदास के पद का कविवर मंगेश पाडगांवकर द्वारा किया गया मराठी अनुवाद देखिए :

हिंदी : अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल
महामोह के नुपूर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल,
भ्रम-भयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल
तृष्णा नाद करति घर भीतर, नाना बिधि दै ताल
माया को कटि फेटा बांध्यो, लोभ-तिलक दियो भाल
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहि काल
सूरदास की सबै अविधा दूरि करौ नंदलाल।

मराठी : नाचलो अता बहुत गोपाळ
काम-क्रोध चोळणा, गळ्यामधि ही विषयाची माळ
महामोह हे नुपूर बाजवि, निंदाशबद रसाळ,
मन पखवाज भ्रमाला थापुन धरी असंगत चाल,
तृष्णानाद घटातुन येई, दे नानाविध ताल
मायेने कटि कसली, सजवी लोभतिलक हे भाल

कोटि कलाविभ्रमी विसरलो स्थल, जल, आणिक काल,
सूरदास मम सर्व अविद्या दूर करी नंदलाल।

प्रस्तुत अनुवाद में मूल के रूपक अलंकार का निर्वाह किया गया है। अतः न केवल अर्थ बल्कि शैली की दृष्टि से भी इस अनुवाद में समतुल्यता है। लेकिन यह स्थिति सभी लक्ष्य भाषाओं के संदर्भ में संभव नहीं। हो सकता है कि स्रोत भाषा का कोई उपमान लक्ष्य भाषा में भी हो, पर वह वैसा ही अर्थ या भाव न देता हो जो स्रोत भाषा में हो। हिंदी में 'उल्लू' मूर्खता का द्योतक है जबकि अंग्रेजी में 'बुद्धिमत्ता' का। ऐसे अवसर पर लक्ष्य भाषा की साहित्यिक संस्कृति के अनुसार उपमान चुनना पड़ता है (जो परभाषी अनुवादक की दृष्टि से कठिन कार्य है) या आलंकारिक शैली को ही छोड़ देना पड़ता है। नारी की कोमलता के वर्णन में 'वह छुई-मुई है' कहा गया हो और अंग्रेजी में उसका अनुवाद करने में कठिनाई होगी। अंग्रेजी में 'छुई-मुई' के लिए नाम तो उपलब्ध है, जैसे -- Mosa, touch-me-not किंतु वह कोमलता का प्रतीक नहीं है। अंग्रेजी में कोमलता के प्रतीक माने जाने वाले उपमान को लेना होगा। जैसे -- She is delicate as a flower. यह तभी संभव होगा जब अनुवादक को मूल का सही आकलन भी हुआ हो और लक्ष्य भाषा में उसके लिए सही उपमान का ज्ञान भी हो। क्या यह हर अनुवादक के संबंध में संभव है? क्या हर अनुवादक के पास स्रोत तथा लक्ष्य भाषा -- दोनों पर मातृभाषावत् अधिकार हो सकता है? ऐसा सबके संदर्भ में संभव नहीं। इसलिए यह कहना पड़ता है कि अनुवाद सहयोग से किया जाने वाला कार्य है। स्वभाषी अनुवादक सही आकलन के लिए स्रोत भाषा-भाषी की सहायता ले। मूल का सही आकलन न होने से अनुवाद में कुछ गंभीर दोष रह सकते हैं। उदाहरणार्थ :

1. **मराठी** : सर्वजण कुर्न्यात आसनस्थ झाले.
   हिंदी अनु. : सभी लोग अपनी कुर्सियों पर बैठ गए।
2. **मराठी** : हे मात्र लाख बोललात.
   हिंदी अनु : यह तो लाखों लोग कहते हैं।

ख) काव्यानुवाद में छंद की समस्या

काव्यानुवाद के संदर्भ में शैली-निर्वाह में छंद एक प्रमुख समस्या है। हम देखते हैं कि अधिकतर काव्य छंदबद्ध ही हैं। छंद के अंतर्गत वर्ण-वृत्तों तथा मात्रिक छंदों के अपने नियम होते हैं। वर्णों तथा मात्राओं की संख्या, गति, यति, गण, तुक आदि के संबंध में नियमों का पालन किया गया होता है। काव्यानुवाद में अनुवादक को इन नियमों के प्रति सजग रहना पड़ता है। इन नियमों के ज्ञाता और कविता कर्म से परिचित अनुवादक छंद निर्वाह में सफल हो जाते हैं। उदाहरण के लिए,

मूल : अवयव की दृढ़ माँस पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार

स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार (कामायनी, प्रसाद)

मराठी अनुवाद : बळकट स्नायू, कणखर बाँधा,
वीर्य, ओज बल, तेज फार,
दृढ़ धमन्यातुन निकोप शोणित
मुक्तपणाने करी विहार (अनु. गो.ग. तपस्वी)

काव्यानुवाद में छंद का निर्वाह करने और तुक को बनाए रखने के लिए शब्द चयन जितना महत्व रखता है उतना ही महत्व पदों के क्रम का होता है। इन सभी के प्रति सजग रहते हुए लक्ष्य भाषा की काव्य भाषा का प्रचलित मुहावरा भी संरक्षित होना चाहिए। ऐसा न होने पर छंदबद्ध काव्यानुवाद अटपटा बन सकता है।

काव्यानुवाद में छंद निर्वाह की असल समस्या तब आती है जब स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा में छंद की अनुरूपता एवं उपयुक्तता के संबंध में प्रतिमान एक जैसे न हों। ''छंद का चुनाव साहित्यिक अनुभव के साथ उसकी उपयुक्तता को देखकर होता है। संस्कृत में विराट तत्व, वर्षा तथा विरह भाव के वर्णन में मंदाक्रांता छंद की उपयुक्तता स्वीकृत है। यह संभव है कि अंग्रेजी में तीनों स्थितियों के लिए एक या अलग-अलग दो या तीन छंद चुने जाएँ जो अपने-अपने साहित्यिक अनुभव के उपयुक्त वाहकों के रूप में अंग्रेजी भाषा की छंद शैली में स्वीकृत हो''। स्पष्ट है कि जो अनुवादक लक्ष्य भाषा की छंद विषयक परंपरा से परिचित होगा, उसे इसके निर्वाह में कठिनाई नहीं आएगी।

निष्कर्ष

अनुवाद में शैली निर्वाह के संबंध में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि :

1. साहित्येतर सामग्री के अनुवाद में शैली निर्वाह की सफलता मुख्यतः पारिभाषिक शब्दों के चयन तथा वाक्य-विन्यास के प्रति सजगता पर निर्भर करती है।
2. अनुवाद बहुघटकीय कार्य-प्रणाली है। अतः अनुवाद की सफलता केवल अनुवादक पर निर्भर नहीं होती।
3. साहित्यिक अनुवाद में शैली का निर्वाह तीन बातों पर निर्भर होता है। एक, मूल रचना का स्वरूप और अनुवाद्यता, दो, स्रोत तथा लक्ष्य भाषाओं की साहित्यिक संस्कृति में समानता; तीन, स्रोत तथा लक्ष्य भाषाओं की साहित्यिक शैलियों के संबंध में अनुवादक की अभिज्ञता।
4. मूल की शैली का सही विश्लेषण और शैली चिह्नकों का सही आकलन शैली निर्वाह के लिए जरूरी है।
5. चूँकि कविता संभावना है, इसलिए उसके एकाधिक अनुवाद संभव हैं।

❑

प्रो. पूरनचंद टंडन

मुहावरे और लोकोक्तियों का अनुवाद

भावों और विचारों की सघन अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावपूर्ण तथा सशक्त बनाने के लिए मुहावरों तथा लाकोक्तियों का भाषा में प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से भाषा चुस्त, सजीव एवं पुष्ट होती है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ वाक्य या वाक्यांश का वह सुगठित एवं परिष्कृत रूप होते हैं जिसमें किसी प्रकार का फेरबदल संभव नहीं होता। वे अपने प्रचलित रूप में ही प्रभावक एवं बोधगम्य होते हैं। ये वास्तव में लोकवाणी का शृंगार हैं और इसी कारण लोक-प्रचलित भी हो जाते हैं। इनसे भाषा में काव्यात्मक स्पर्श का आभास मिलता है और इसी कारण इनकी साहित्यिक उपयोगिता स्थापित होती है। लोक-साहित्य तथा अभिजात (शिष्ट) साहित्य में उनकी बराबर सराहना की जाती रही है।

मुहावरा : अर्थ एवं स्वरूप

'मुहावरा' शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'इडियम' (Idiom) है। लैटिन और फ्रेंच से होता हुआ यह शब्द अंग्रेजी में आया है। साहित्य में इसके महाविरा, मुहाविरा, मुहावरा, महावुरा, महावरा तथा मुहावरा आदि कई रूप मिलते हैं। प्राचीन अर्थ के आधार पर मुहावरे से तात्पर्य था -- 'आपस में बातचीत'। उर्दू-हिंदी शब्दकोश में मुहावरे के प्रचलित पर्याय में मुहर्रफ़, मुहर्रिफ़, मुहावरत तथा मुहावरात आदि शब्द मिलते हैं। उर्दू में इसे 'तर्ज़े कलाम' तथा 'इस्तलाह' भी कहा जाता है।

मुहावरा शब्द का अर्थ 'वक्रित' या 'टेढ़ा किया गया' से लिया जाता है अर्थात् वह वाक्य या वाक्यांश जो सीधे या अभिधेय अर्थ से भिन्न अर्थ दे तथा दैनिक बोलचाल का प्रयोग हो, मुहावरा कहलाता है। संस्कृत में 'मुहावरा' शब्द के वाग्रीति, वाग्व्यापार, वाग्धारा, वाग्व्यवहार, विशिष्ट वचनं, विशिष्ट वाक्यं तथा भाषा-विशेषण आदि कई पर्याय मिलते हैं। वास्तव में आज के प्रचलित अर्थ में 'मुहावरा' शब्द जिस निहित अर्थ का द्योतक है, उस अर्थ का द्योतक कोई भी अन्य पर्याय नहीं। इसके यथार्थ अर्थ का जो बोध 'मुहावरा' शब्द से होता है वह हिंदी के अन्य पर्याय 'वाग्धारा', 'भाषा-संप्रदाय' या 'वाक्-संप्रदाय' आदि प्रयोगों से नहीं हो पाता।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में 'मुहावरे' के अंग्रेजी पर्याय 'इडियम' (Idiom) को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "किसी भाषा के लिए शब्दों, व्याकरण-संबंधी रचनाओं तथा वाक्य-रचनाओं

इत्यादि के वर्णन का शिष्ट ढंग ही मुहावरा है।'' वहीं वेबस्टर के अंतर्राष्ट्रीय कोश में कहा गया है कि ''किसी भाषा के विशेष ढाँचे में ढला हुआ वह वाक्य मुहावरा कहलाता है जिसकी व्याकरण-संबंधी रचना उसी के लिए विशिष्ट हो और जिसका अर्थ उसकी साधारण भाषा एवं शब्द-योजना से न निकल सके।''

'हिंदी शब्द सागर' के अनुसार ''लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वह वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ अभिधेय अर्थ से विलक्षण हो 'मुहावरा' कहलाता है।'' 'भाषा विज्ञान कोश' के अनुसार, ''भाषा-विशेष में प्रचलित प्रयोग, वाक्यांश या कुछ पदों अथवा शब्दों का समूह, जिसका अभिधार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ ही लिया जाता है, 'मुहावरा' कहलाता है।'' इसी प्रकार मुहावरे की अन्य भी कई परिभाषाएँ उपलब्ध होती हैं, किंतु सभी में व्यक्त मुख्य तत्व ये हैं :

- मुहावरा किसी भाषा का वह विशिष्ट रूप, गुण तथा स्वभाव (लक्षण) है जिसे एक व्याकरणिक रचना कहा जा सकता है।
- इससे भाषा में विचित्रता अथवा वाग्वैचित्रय की सृष्टि होती है और इसीलिए किसी देश, जाति अथवा जनसमूह की विलक्षण वाक्-शैली के रूप में भी इसे जाना जाता है।
- इसका अर्थ सामान्य भाषा एवं उसकी शब्द-योजना से सीधे-सीधे ग्राह्य नहीं होता और यह भाषा के एक विशिष्ट ढाँचे में ढला हुआ होता है।
- गठे हुए उस वाक्यांश या वाक्य को मुहावरा कहते हैं जिसके गठन में परिवर्तन होने पर उसका लाक्षणिक अर्थ नहीं निकल पाता। अर्थात् मुहावरे का भाषिक गठन अपरिवर्तनीय होता है।
- मुहावरेदार भाषा को आलंकारिक भाषा भी कहा जाता है।
- मुहावरे किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश या शब्द होते हैं तथा व्याकरणिक नियमों से निरपेक्ष होते हैं।
- मुहावरे प्रायः शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों, कहावतों, कहानियों, कथ्यों, घटनाओं, स्थितियों अथवा भाषिक विलक्षण-प्रयोगों के आधार पर ही निर्मित होते हैं।
- सभी वाक्य या वाक्यांश मुहावरे नहीं होते जबकि सभी मुहावरे वाक्यांश या वाक्य होते हैं।

मुहावरे अधिकांशतः शारीरिक अंगों के आधार पर अथवा प्रकृति के प्रमुख अवयवों के आधार पर ही निर्मित होते हैं। यथा -- आँखें दिखाना, उँगली पर नचाना, कान पर जूँ न रेंगना, गले का हार होना, गाल बजाना, छाती पर मूँग दलना, जान सूखना, मन मारना, जी-जान लड़ाना, मुँह काला करना, सिर मारना, हाथ तंग होना, हृदय पसीजना, दाँत पीसना, नाक कटना, फूँक-फूँक कर पैर रखना, पेट में चूहे कूदना, अंगूठा दिखाना तथा आकाश से तारे तोड़ना, उल्लू सीधा करना, कमर कसना, खून खौलना, थूक कर चाटना, गोबर-गणेश करना, धज्जियाँ उड़ाना, खाक छानना आदि।

लोकोक्ति : अर्थ और स्वरूप

'लोकोक्ति' शब्द से तात्पर्य है 'लोक में प्रचलित उक्ति'। 'लोकोक्ति' शब्द में मध्यम पद लुप्त हो जाने वाला समास है। अतः लोकोक्ति से अर्थ है -- 'लोककल्याणाय उक्तिः लोकोक्तिः' अथवा 'लोकप्रचलिता उक्तिः लोकोक्तिः'

'लोक' शब्द से अर्थ लिया जाता है -- 'वह जो दिखाई दे' अर्थात् 'लोक्यतेऽसौ इति लोकः।' 'लोक' शब्द घञ् प्रत्यय लगने से 'लोकः' बनता है। 'लोक' शब्द का अर्थ 'देखने वाला' भी है। अतः वह जनसमुदाय जो समस्त कार्यों को देखता है, करता है, लोक कहलाता है। 'उक्ति' शब्द का अर्थ है -- 'कथन'। अतः लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ हुआ -- 'लोक-प्रसिद्ध' या 'लोकप्रचलित-उक्ति।' लेकिन उल्लेखनीय है कि लोकप्रचलित या प्रसिद्ध प्रत्येक उक्ति को लोकोक्ति नहीं कहा जा सकता। यह 'विशिष्ट उक्ति' ही होती है। लोकोक्ति किसी भाषा, देश या काल तक सीमित नहीं होती। यह तो सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभाषिक संपत्ति के रूप में उपलब्ध होती है।

लोकोक्ति के अर्थ-संदर्भ में 'कहावत' शब्द तथा व्यवहार भी नजर आते हैं। 'कहावत कोश' के संपादकद्वय में से श्री विक्रमादित्य मिश्र के अनुसार, ''चूँकि ये सूत्रवाक्य (कहावत) जीवन के सार्वभौम सत्य, सुख-दुःख, जीवन-मरण, आचार-विचार, रीति-नीति, खान-पान, शकुन-अपशकुन, खेती-बारी, आहार-विहार, पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि से संबद्ध हैं, इसीलिए ये सामान्य अथवा सर्वमान्य उक्तियों के रूप में प्रचलित हो गए और चूँकि ये उक्तियाँ यथावसर परस्पर कही-सुनी जाती रहीं, इसलिए इन्हें लोक-जीवन में 'कहावत' नाम से अभिहित किया गया।'' संस्कृत में 'लोकोक्ति' शब्द के लिए 'लोकप्रवाह', 'लौकिक गाथा' तथा 'आभणक' आदि पर्याय शब्द मिलते हैं।

यूरोपीय भाषाओं में लोकोक्ति के संदर्भ में जो विचार प्रकट किए गए हैं उनके आधार पर लोकोक्ति अंधकार में प्रकाश पुँज का काम करती है। संसार की समस्त संभावनाएँ इसमें निहित होती हैं। ये अनुभवों की संतति तथा ज्ञान का पथ होती हैं। संसार के समस्त विचारकों तक पहुँचने का सोपान कहलाने वाली लोकोक्तियाँ समाज के सारतत्व का संकलन कही जाती हैं और इसलिए इसे 'समस्त ज्ञान की माता' भी कहा गया है। उनके अनुसार, लोकवाणी ईश्वरीय वाणी होती है। इन सभी बातों में लोकोक्ति की विभिन्न विशेषताएँ तो उभरकर आती हैं किंतु कोई एकमात्र परिभाषा नहीं मिल पाती।

शिप्ले ने अपने साहित्यिक पारिभाषिक कोश में लिखा है, ''लोकोक्ति लोक साहित्य का संक्षिप्त किंतु अर्थपूर्ण एक सूत्रमय प्रकार है, जिसमें सामान्य अनुभव पर आधारित संक्षेपतः जीवन की एक विचारपूर्ण आलोचना मिलती है।'' एक अन्य विश्वकोश में कहा गया है कि ''लोकोक्ति किसी सत्य अथवा किसी उपयोगी विचार को एक संक्षिप्त वाक्य में कहती है। इसके प्रयोग से भाषा में सरसता एवं चित्रात्मकता आ जाती है। इनका प्रयोग चिरकाल से

अनेक व्यक्तियों द्वारा होता रहा है और आज भी प्रसंगानुसार इसका प्रयोग होता है। जन-सामान्य द्वारा ग्रहण किए जाने पर ही कोई उक्ति लोकोक्ति का रूप धारण करती है।''

लोकोक्तियों के पीछे कोई सामाजिक, राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक घटना प्रधान रहती है। ये घटनाएँ, संदर्भ या स्थितियाँ किसी एक वाक्य या वाक्यांश से स्पष्ट प्रतीत होती हैं। जैसे -- 'अंगूर खट्टे हैं' -- जैसे कथन का सीधा अर्थ या शब्दार्थ है -- ''खाने वाले अंगूर मीठे नहीं, खट्टे हैं।'' जबकि इस लोकोक्ति के पीछे जो कथ्य या घटना आधार बनी है वह है कि अपने बच्चे के साथ जा रही किसी लोमड़ी ने एक बेल पर लटके हुए रसभरे अंगूर देखे। उसके मुँह में पानी भर आया। वह मन ही मन उन्हें खाने की युक्ति सोचने लगी। उसने अपने बच्चे को एक तरफ बैठा दिया और दो-चार-छह या दस बार छलांग लगाकर उन अंगूरों को तोड़ना चाहा। वह बहुत प्रयास करने पर भी उन अंगूरों को पा न सकी। परिणामतः वह पसीने से चूर-थककर वहीं बैठ गई। कुछ आराम करने पर उसने फिर छलांगें लगाईं पर वह किसी भी तरह अंगूर के गुच्छे तक न पहुँच सकी। जब उसने हर तरह से कोशिश कर ली और वह सफल न होने पर यह मान बैठी कि अब किसी तरह से ये अंगूर नहीं प्राप्त किए जा सकते, तो उसने अपना मन मारकर अपने को यह समझाया कि अरे! ये तो खट्टे अंगूर हैं, इन्हें क्या खाना; छोड़ो। हम भला खट्टे अंगूर खाएँगे? हरगिज नहीं। यह सोचकर वह बच्चे को लेकर वहाँ से चल पड़ी। वहीं छिपा लोमड़ी की भाषा समझने वाला एक गड़रिया उस घटना को देख रहा था। लोमड़ी से उसके बच्चे ने पूछा कि अंगूर क्यों नहीं तोड़े? तो लोमड़ी ने यह कहने की अपेक्षा की अंगूर प्राप्त नहीं किए जा सके, यह कहा कि ''अंगूर खट्टे हैं।'' इसीलिए उसने अपना इरादा बदल दिया। गड़रिया उस संवाद को सुनकर हँस पड़ा और तभी उसे लगा कि यह कितना सटीक प्रयोग है। उसने जब कहीं बहुत प्रयास करने पर भी किसी कार्य से कोई उपलब्धि न होने और उसमें ही दोष निकालने की स्थिति देखी तो कहना शुरू कर दिया, ''अंगूर खट्टे हैं।'' तभी से यह प्रयोग इसी प्रकार के विशिष्ट अर्थ के लिए निश्चित हो गया।

इसी तरह नाच न जाने आँगन टेढ़ा, उलटा चोर कोतवाल को डाँटे, आँख का अंधा नाम नैनसुख, अंधी पीसे कुत्ता खाए, अँधेर नगरी चौपट राजा, अब पछताय होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत, अंधों मं काना राजा, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं, अक्ल बड़ी या भैंस, एक पंथ दो काज, चोर की दाढ़ी में तिनका, अंधे के आगे रोवे-अपने नैन खोवे, जिसकी लाठी उसकी भैंस, घर का भेदी लंका ढाए, खोदा पहाड़ निकली चूहिया, कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली, अंधा क्या माँगे दो आँखें, काला अक्षर भैंस बराबर, कोयले की दलाली में हाथ काला, मुख में राम बगल में छुरी आदि अनेक लोकोक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

हिंदी साहित्य में इन लोकोक्तियों का अपार भंडार सुरक्षित है। विभिन्न कवियों, लेखकों, समीक्षकों एवं पत्रकारों ने समय-समय पर अवसरानुसार इनका सटीक प्रयोग किया है। आदिकाल

से लेकर आज तक के साहित्य में इन धरोहर की आभा को देखा जा सकता है। समाज, नीति, धर्म, अनुभव, व्यवहार, शिक्षा, उपदेश, विश्वास, अंधविश्वास, रीति, ज्ञान, घटना, भाव, स्थिति तथा विचार आदि को मार्मिक, चमत्कारिक एवं प्रेक्षणीय बनाकर सँजोने एवं चिरजीवी बनाने का इससे उत्तम उपाय कोई दिखाई नहीं देता।

लोकोक्ति की प्रमुख विशेषताएँ

लोकोक्ति की प्रमुख विशेषताओं में संक्षिप्तता, सारगर्भिता, प्राणवत्ता, लोकप्रियता तथा मानवीय अनुभवों की प्रामाणिकता आदि की चर्चा की जाती है।

संक्षिप्तता : विस्तृत भाव को कम से कम शब्दों में अभिव्यक्त करने के कारण संक्षिप्तता लोकोक्ति की अन्यतम विशेषता कहलाती है। अनुभव-गंभीर व्यापक दृष्टि, समस्याएँ और निदान की संक्षिप्त अभिव्यक्ति, सहज, मार्मिक तथा प्रभावी तो होती ही है, स्मरणीय भी होती है। लाघव ही लोकोक्ति को सूत्रता प्रदान करता है। इसी से रोचकता तथा अर्थवत्ता भी आती है। समास-शैली के कारण ही यह 'गागर में सागर' को चरितार्थ करती है। अनावश्यक शब्दों का बहिष्कार इसकी शक्ति के वर्द्धक कारण हैं। यथा -- 'आ बैल मुझे मार', 'अपनी डफली-अपना राग', 'ऊँट के मुँह में जीरा', 'दूर के ढोल सुहावने', 'चोर-चोर मौसेरे भाई', 'नेकी और पूछ-पूछ', 'नीम-हकीम खतरे जान', 'दुधारी गाय की लात भली', 'जैसा राजा वैसी प्रजा', 'नौ नगद न तेरह उधार', 'तू डाल-डाल मैं पात-पात' तथा 'डूबते को तिनके का सहारा' आदि। कुछ कहावतें लंबी भी होती हैं किंतु उनमें भी संक्षिप्तता का ध्यान रखा गया होता है।

सारगर्भिता : लोकोक्ति अगर सारगर्भित नहीं होगी तो वायवी या वाग्जाल मात्र बनकर रह जाएगी। लोकोक्ति जितनी सारगर्भित होगी उतनी ही प्रभावी भी होगी। लोकोक्ति का संक्षिप्त होना सार हित होना नहीं होता। कई बार दोहे, चौपाई या काव्यादि की कुछ पंक्तियाँ भी प्रचलित होते-होते लोकोक्ति का रूप ले लेती है। इसका कारण उनके भीतर बसे अर्थ तथा सार की गंभीरता ही होती है। यथा, ''जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ', 'जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजै', 'जाके पाँव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई' तथा 'जस दूलह तस बनी बराता' जैसी लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की हैं। 'गुण के गाहक सहज नर बिन गुन लहै न कोय' भी इसी प्रकार की लोकोक्ति हैं जो गिरधर कविराय की कुंडली से ली गई हैं।

प्राणवत्ता : लोकोक्ति का जीवंत एवं सजीव होना ही उसकी प्राणवत्ता का सूचक होता है। भंगिमापूर्ण लोकोक्ति ही वैचित्र्य का कारण बनती है। मुक्तक शैली तथा हृदय में सीधे उतर जाने का गुण इसकी विशिष्ट पहचान बनते हैं। लोकोक्ति को कालजयी बनाने वाली विशेषता भी उसकी प्राणवत्ता (जीवंतता, सहजता, सरसता तथा लोक-रुचि अनुकूलता) ही होती है। इन्हीं सब कारणों से लोकोक्ति में एक खास तरह का चटपटा स्वाद आ जाता है। लोकोक्ति जितनी लोक-अनुभव एवं अनुभव-गांभीर्य से जुड़ी होगी उतनी ही अधिक जीवंत होगी। उपदेशात्मकता

लोकोक्ति को किसी हद तक नीरस करती है, किंतु संपूर्णतः लोकोक्ति में वैचित्र्य-रस रहता ही है। जैसे, 'एक तो करेला दूसरा नीम चढ़ा', 'बगल में छोरा शहर में ढिंढोरा', 'जिसको पिया माने वही सुहागिन' तथा 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' आदि।

लोकप्रियता : लोकोक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है -- उसका लोकप्रिय होना। लोक-प्रचलन एवं प्रसिद्धि ही उसके स्वरूप को निर्धारित करते हैं। लोक-स्वीकृति से ही वह लोक-उक्ति कहलाती है। सही अर्थों में यही उसका प्राणतत्व भी है। अनुभव सार्वजनीन बनकर जब लोक-मानस की बुद्धि को और उसके वैचारिक धरातल को प्रभावित करता है तभी लोकोक्ति का जन्म होता है। एक व्यक्ति के अनुभव का सार्वजनीन होना, व्यष्टि से समष्टि तक पहुँचना ही इसकी ताकत है। यही उसे प्रामाणिकता भी प्रदान करता है।

मानवीय अनुभवों की प्रामाणिकता : मनुष्य जीवन के विविध अनुभव, व्यवहार, नीति, उपदेश, घटना, स्थिति, कथा आदि का प्रकाशन लोकोक्ति के माध्यम से ही संभव हो पाता है। यही कारण है कि मानव-जीवन की विविध अनुभूतियों तथा जीवन-यात्रा के अनुभवों से प्राप्त ज्ञान इनमें संचित होता है। यथा, 'अधजल गगरी छलकत जाय', 'थोथा चना बाजे घना', 'जो गरजते हैं वो बरसते नहीं', 'नौ नगद न तेरह उधार', 'ऊँची दुकान फीका पकवान', 'बिल्ली के भागो छींका फूटा', 'भैंस के आगे बीन बजाना', 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' तथा 'हाथ कंगन को आरसी क्या' आदि लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की हैं।

मुहावरे-लोकोक्तियों का महत्व

लोकोक्तियों और मुहावरे लोकानुभव की सिद्ध मणियाँ हैं। इन मार्गदर्शक अनुभवों के ज्ञान से मनुष्य की वाक्-शक्ति संपन्न एवं सुदृढ़ होती है तथा इनसे हमारे नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की आधारशिलाएँ मजबूत होती हैं। ये ज्ञान-गठरी के वे रूप हैं जिनमें 'गागर में सागर' का भाव समाया है। वास्तव में इन्हें जीवन के निरंतर चिंतन का प्रतिफल कहा जा सकता है। समय, स्थिति एवं अंतराल के आधार पर कुछ मुहावरे या लोकोक्तियाँ लुप्त भी हो जाते हैं तथा कुछ नए भी निर्मित होते हैं किंतु किसी भी भाषा के प्रमाणत्व का भाव इनमें सदैव निहित रहता है। आज आवश्यकता है लोक प्रचलित इस प्रकार की धूल में पड़ी अनेक मुक्ता-मणियों को संयोजित अथवा संकलित करने की तथा साहित्य में शामिल कर उन्हें अधिक से अधिक जनमानस के समक्ष लाने की। लोकोक्तियों और मुहावरों के माध्यम से ही हम अपनी परंपरा, अपनी चेतना एवं संस्कृति से जुड़े रह सकते हैं। साहित्य-मर्मज्ञों द्वारा समय-समय पर प्रयुक्त किए जाने वाले इन मुहावरे-लोकोक्तियों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा साहित्यिक आदि परिस्थितियों का प्रभावी, भावात्मक, सारगर्भित, उपयोगी, व्यंग्यात्मक, सजीव एवं प्रेरक चित्रण मिलता है। लोक-मानस के अंतर्मन पर सदैव आच्छादित रहने वाले ये मुहावरे या लोकोक्तियाँ समय-समय पर अवसर पाकर उसी प्रकार प्रकाशित हो उठते हैं जैसे मिट्टी

में सदैव बसी रहने वाली गंध पानी पड़ते ही बाहर बिखर जाती है। उचित अवसर एवं सटीक प्रसंग ही इनकी अभिव्यक्ति का कारण बनते हैं। अतः कह सकते हैं कि लोक-जीवन तथा जनमानस की प्राचीनतम धरोहर के रूप में उपलब्ध इस निधि में राष्ट्र एवं संसार का युगों-युगों का अनुभव सिद्ध ज्ञान सुरक्षित है। हमारा नीति-साहित्य तो इन अनुभव-सिद्ध दीपकों के आलोक द्वारा युगों से मार्ग प्रशस्त कर रहा है। इन्हें जीवन के सन्मार्ग-दर्शक सूत्र भी कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

जीवन के सत्य को सुंदर ढंग से उद्‌घाटित तथा मानव-जीवन की गहन अनुभूतियों को व्यक्त करने वाले इन भाषिक उपकरणों में भाव-गरिमा कूट-कूट कर भरी होती है। जीवन की पाठशाला में यही सचेत शिक्षक या 'गुरु' की भूमिका निभाते हैं। सांसारिक व्यवहार-पटुता तथा सामान्य बुद्धि का विलक्षण निदर्शन इनमें मिलता है।

मुहावरे और लोकोक्तियों से भाषिक शक्ति समृद्ध होती है, कथन में वक्रता एवं चमत्कार उत्पन्न होता है तथा अभिव्यंजना स्पष्ट, प्रखर एवं प्रभावी होती है। भाषिक सौंदर्य और कारणभूत तत्वों में इनका मुख्य स्थान रहा है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ गद्य एवं पद्य दोनों ही भाषाओं को प्राणवान बनाते हैं। वास्तव में 'भाषिक गृह' को मुहावरे एवं लोकोक्ति रूपी दीपक ही आलोकित करते हैं।

लोकोक्ति-मुहावरे के स्तर पर अनुवाद

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा का रूप जहाँ एक ओर सामान्य एवं सरल माना गया है वहीं दूसरी ओर भाषा सामाजिक धरातल पर व्यंग्यात्मक एवं लाक्षणिक रूपों से भी परिपूर्ण हो जाती है। सामाजिक-सांस्कृतिक स्थल पर लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे ऐसी भाषिक संरचनाएँ हैं जिनमें किसी स्थल विशेष की परंपराएँ, संस्कार अथवा आचार-विचार प्रभावित होते रहते हैं। वस्तुतः मुहावरे-लोकोकितयों का मूल स्रोत देश अथवा भाषा की संस्कृति ही होती है। लोकोक्ति-मुहावरे किसी देश-विदेश या भाषा की सांस्कृतिक चेतना के वाहक होते हैं और भाषा की अभिव्यक्ति को विशिष्टता प्रदान करते हुए उसे सशक्त स्वरूप प्रदान करते हैं। इनसे भाषा को सहजता और स्वाभाविकता भी प्राप्त होती है।

चूँकि प्रत्येक भाषा-भाषी समाज की भिन्न-भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताएँ होती हैं और उनमें अपने सामूहिक अनुभव सम्मिलित होते हैं, इसलिए प्रत्येक भाषा में विशिष्ट मुहावरे और लोकोक्तियाँ पाई जाती हैं जिनके सांस्कृतिक संदर्भ अलग-अलग हैं। एक भाषा से दूसरी भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का सही संप्रेषण जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कठिन भी है। ऐसे में अनुवादक के समक्ष कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। मुहावरे-लोकोक्ति के अनुवाद में अनुवादक को मुहावरे-लोकोक्ति की व्यंजना को सुरक्षित रखना होता है, उसकी लोकाश्रित पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना होता है तथा उसके शब्द-संयोजन के प्रति सावधान

रहना पड़ता है। उसका परम दायित्व यह भी होता है कि वह अर्थ संबंधी एवं शैलीगत विशिष्टताओं को सुरक्षित रखे और ऐसे में वह भाषा की प्रकृति से ही यथासमय जूझता रहता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए अनुवादक को चाहिए कि जहाँ लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के मुहावरे-लोकोक्तियों के समान लोकोक्ति-मुहावरे न मिले वहाँ अर्थ की दृष्टि से समान मुहावरे-लोकोक्ति को प्रतिस्थापित कर दिया जाए।

यदि हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा के लोकोक्ति-मुहावरों की बात की जाए तो यहाँ ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएँगे जहाँ समान अभिव्यक्ति या शब्दानुवाद से कार्य पूर्ण हो जाता है। ऐसे कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

1. The thief was kept red-handed.	चोर रंगे हाथों पकड़ा गया।
2. You can't throw dust into my eyes.	तुम मेरी आँखों में धूल नहीं झोंक सकते।
3. One fish infects the whole water.	एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है।
4. All's well that ends well.	अंत भला सो सब भला।
5. An empty mind is devel's workshop.	खाली दिमाग शैतान का घर।
6. Necessity is the mother of invention.	आवश्यकता आविष्कार की जननी है।
7. As you sow, so shall you reap.	जैसा बोओगे वैसा पाओगे / जैसी करनी वैसी भरनी।

उपर्युक्त उदाहरण शब्दानुवाद को प्रकट करते हैं। ऐसे लोकोक्ति-मुहावरे कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं करते। किंतु अनुवाद की समस्याएँ-सीमाएँ तब आरंभ होती हैं जब शब्दानुवाद से मूल अर्थ को बाधा पहुँचती है अथवा दूसरी भाषा में समानाभिव्यक्ति नहीं मिल पाती है। ऐसे में अनुवादक की कोशिश रहनी चाहिए कि निकटार्थक मुहावरे-लोकोक्ति की खोजकर उसका अनुवाद प्रस्तुत करे। अनुवाद की शैली में अर्थ के स्तर पर आंशिक समानता के आधार पर मुहावरे-लोकोक्ति की खोज की जाती है। उदाहरण के लिए, 'It is his herculean task' का यदि अनुवाद करना हो तो यह बात स्पष्ट ही है कि 'Herculean' हिंदी भाषी के लिए अपरिचित है। यह वह व्यक्ति है जो अपने कार्य में सिद्ध हुआ था। अतः यह मुहावरा कार्य की सिद्धि को प्रकट करता है तथा प्रत्येक हिंदी भाषी जानता है कि भगीरथ भी अपने मनोरथ में सिद्ध हुआ था। इसलिए इस मुहावरे का सटीक अनुवाद 'यह उसका हरक्युलियन प्रयास है' न होकर 'यह उसका भागीरथी प्रयास है' होगा। इस प्रकार का सांस्कृतिक अंतर आने पर अर्थाभिव्यक्ति को महत्ता दी जाती है। इस प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण हैं :

1. Barking dogs seldom bite.	जो गरजते हैं वे बरसते नहीं।
2. A figure among cyphere.	अंधों में काना राजा।
3. Every potter prasies his own pots.	अपनी दही को कौन खट्टा कहता है।
4. It is a cock and bull story.	यह बेसिर-पैर की बात है।

5. A drop in the ocean. ऊँट के मुँह में जीरा।

6. Union is strength. एक और एक ग्यारह होते हैं।

लोकोक्ति-मुहावरों के अनुवाद के दौरान यदा-कदा आवश्यकता पड़ने पर भावानुवाद की पद्धति भी अपनाई जा सकती है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनके शब्दानुवाद हास्यास्पद स्थिति लाते हैं, जबकि भावानुवाद से अनुवाद हो जाता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

1. I took him to task.

शब्दानुवाद : मैंने उसका काम किया।

भावानुवाद : मैंने उसकी खबर ली।

2. He has got on my nevers.

शब्दानुवाद : वह मेरी नसों पर चढ़ गया है।

भावानुवाद : उसने मेरी नाक में दम कर दिया है।

3. Purse is the best friend.

शब्दानुवाद : बटुआ सबसे घनिष्ठ मित्र है।

भावानुवाद : बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया।

4. His bread is buttered on both side.

शब्दानुवाद : उसकी रोटी दोनों तरफ से मक्खन से चुपड़ी है।

भावानुवाद : उसकी पाँचों उंगलियाँ घी में हैं।

लोकोक्ति-मुहावरों के भावानुवाद की पद्धति भी यदा-कदा पूर्ण अर्थ ध्वनित करने में अक्षम होती है। इसका मुख्य कारण सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक संदर्भ होते हैं। दोनों भाषाओं के संदर्भ की दूरी इतनी अधिक होती है कि उनकी अर्थ छवियाँ अनूदित नहीं की जा सकतीं। ऐसे में अनुवादक मूक-सा हो जाता है और इसके समाधान के रूप में वह अननुवाद्यता की स्थिति तक पहुँच जाता है। इसके समाधान के रूप में वह उन्हें यथावत रूप में व्यक्त कर पाद-टिप्पणी का सहारा लेकर अपने दायित्व को पूर्ण करता है। हिंदी में ऐसे अनेक सांस्कृतिक आधारयुक्त मुहावरे हैं जिनका अंग्रेजी में सटीक अनुवाद संभव नहीं। जैसे, 'गंगा नहाना', 'श्रीगणेश करना', 'हाथ पीले करना', 'चूल्हा-चौका करना', 'सदा सुहागन रहना' आदि ऐसे मुहावरे हैं जिनके समानार्थक मिलना संभव नहीं। इनका शब्दानुवाद या भावानुवाद संभव नहीं है। अतः इन्हें स्पष्ट करने के लिए व्याख्यात्मक टिप्पणियों का सहारा लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अक्सर ऐसा देखा गया है कि अंग्रेजी के मुहावरेदार वाक्यों का हिंदी में अनुवाद हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, 'The doctor was called in at the eleventh hour but the patient died.' वाक्य का अक्सर अनुवाद 'डॉक्टर को ग्यारह बजे बुलाया किंतु रोगी की मृत्यु हो गई।' देखा गया है। किंतु ध्यान देने की बात यह है कि इस वाक्य में प्रयुक्त 'eleventh hour' सामान्य शब्द न होकर वाक्य की मुहावरेदार प्रस्तुति

है। इसलिए इस मुहावरेदार वाक्य का सटीक अनुवाद होगा -- 'अंतिम समय डॉक्टर को बुलाया गया किंतु रोगी की मृत्यु हो गई।' इसी प्रकार 'Kashmir is a bone of contention between Indian and Pakistan.' का अनुवाद 'भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर लड़ाई की हड्डी है।' न होकर 'भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर झगड़े की जड़ है' होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मुहावरे एवं लोकोक्तियों के अनुवाद की सबसे बड़ी सीमा उनके सांस्कृतिक-सामाजिक संदर्भ हैं जिनके प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है और प्रसंगानुसार उनका शब्दानुवाद, भावानुवाद अथवा व्याख्यात्मक अनुवाद किया जाना चाहिए।

अंत में यही कहा जा सकता है कि लोकोक्ति एवं मुहावरे किसी समाज विशेष के विचारों या मतों के वाहक होते हैं। लोकोक्ति ऐसी उक्तियाँ हैं जिनमें समाज विशेष के लोकानुभव और लोक कथा समाहित रहती हैं, जबकि मुहावरे उन वाक्यांशों को कहते हैं जो समाज के विचारों का समाहार रूप प्रस्तुत करते हैं। लोकोक्ति एवं मुहावरे दोनों ही समाज-संस्कृति के वाहक होते हैं। यही कारण है कि ये उक्तियाँ अभिधात्मक रूप में न होते हुए प्रायः व्यंग्यात्मक रूप लिए हुए होती हैं। अतः अनुवादक के सामने सबसे बड़ी सीमा इस व्यंजना को बनाए रखना होता है। वस्तुतः हर समाज के विचार दूसरे समाज से प्रायः भिन्न होते हैं। अतः उन्हें शब्दानुवाद द्वारा नहीं लाया जा सकता। अनुवादक सरल मुहावरों का तो शब्दानुवाद कर देता है। जैसे 'As you sow so as you reap' का शब्दानुवाद 'जैसा बोओगे वैसा काटोगे' होगा। किंतु 'between scyila and charaybdis' और 'A narrow squeak' जैसे मुहावरों का शब्दानुवाद नहीं हो सकता। इस समस्या का समाधान भावानुवाद द्वारा निकाला जा सकता है। तब उपर्युक्त मुहावरों का सटीक अनुवाद होगा क्रमशः 'इधर कुआँ उधर खाई' तथा 'बाल-बाल बचना'। अतः लोकोक्ति-मुहावरे के अनुवाद में उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान ही उनकी सीमाएँ हैं।

❑

डॉ. हरीश कुमार सेठी

अनुवाद में सटीक शब्दावली प्रयोग : विविध संदर्भ

अनुवाद करते समय एक (स्रोत) भाषा के पाठ (सामग्री) को दूसरी (लक्ष्य) भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन यह प्रस्तुति, स्रोत भाषा सामग्री का लक्ष्य भाषा में केवल शब्दों का अंतरण मात्र नहीं होता है। अनुवाद करते समय, शब्दार्थ के साथ-साथ मूल आशय (कथ्य) का भी अंतरण होता है। इसीलिए यह स्वीकार किया जाता है कि अनुवाद में स्रोत भाषा का नहीं बल्कि पाठ के कथ्य का अंतरण होता है। अनुवादक यह अंतरण, स्रोत भाषा के शब्दों-वाक्यों आदि के साथ सामंजस्य बैठाते हुए करता है। लेकिन सामंजस्य की इस प्रक्रिया में सटीक शब्दावली/पर्याय के चयन एवं प्रयोग का विशेष महत्व है।

'शब्द' और 'पर्याय' क्या है? :

'शब्द' को भाषा की लघुतम, सार्थक और स्वतंत्र इकाई कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक शब्द का एक निश्चित अर्थ होता है और उनका स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वाक्यों की रचना शब्दों के संयोग से होती है। शब्द ही वे मोती हैं जो व्याकरणिक नियमों के धागे में बंधकर वाक्य रूपी माला का अंग बन भावों-विचारों को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इसीलिए, शब्द का कथ्य की अभिव्यक्ति से अटूट संबंध है। भाषा-विशेष में प्रयुक्त किए जाने वाले शब्दों के समूह को 'शब्दावली' कहा जाता है। भाषा में प्रत्येक सार्थक शब्द का एक निश्चित और निर्धारित अर्थ होता है। भाषा अध्ययन जगत में उस अर्थ को 'मुख्यार्थ' कहा जाता है। यह मुख्यार्थ ही शब्द के अभिधार्थ (connotative meaning) को व्यक्त करता है। इसके अलावा, शब्द के लक्ष्यार्थ और व्यंजनार्थ भी होते हैं, जो वाक्य में निहित होते हैं और उसके जरिए संकेत करते हैं।

शब्द भले ही अपना स्वतंत्र रखते हों, लेकिन, अगर वे सार्थक नहीं हैं तो वे अनुपयोगी ही सिद्ध होते हैं। प्रत्येक सार्थक शब्द का कोई न कोई विशिष्ट अर्थ होता है। हाँ, यह बात अलग है कि एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों के लिए भी प्रयुक्त किया जाए या एक ही अर्थ को व्यक्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के शब्दों को व्यवहार में लाया जाए। यह भाषा में शब्दों की पर्यायता या अनेकार्थकता की स्थिति है। उदाहरण के लिए, 'पानी' शब्द के अर्थ में 'वारि', 'जल' और 'नीर' जैसे शब्दों को भी व्यवहार में लाया जाता है। ये सभी शब्द 'पानी'

के ही पर्याय हैं। अंग्रेजी भाषा के संदर्भ में भी देखें तो 'acceptance', 'approval', 'agreement', 'concord', 'accord', 'sanction', 'consent' और 'assent' जैसे शब्द एक ही अर्थ-परिवार के शब्द हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'समान अर्थ को व्यंजित करने वाले शब्दों को पर्याय कहते हैं।' किसी शब्द-विशेष के अर्थ को व्यक्त करने वाला दूसरा शब्द पर्याय है, समानार्थवाची है। इसे 'समानार्थक शब्द' अथवा 'प्रतिशब्द' भी कहा जाता है।

जिस भाषा का शब्दावली भंडार व्यापक-विस्तृत होता है, वह भाषा उतनी ही समृद्ध एवं संपन्न मानी जाती है। वहीं, यह भी स्वीकार किया जाता है कि जिस भाषा में समानार्थवाची शब्दों की बहुलता होती है, वह भाषा समृद्ध होती है। इसी प्रकार, व्यक्ति के स्तर पर देखा जाए तो जिस भाषा-प्रयोक्ता का मनोमस्तिष्क भाषा-विशेष के व्यापक शब्दावली भंडार में से तरह-तरह की शब्दावली से समृद्ध होता है, वह उतना अधिक बेहतर भाषा-प्रयोक्ता सिद्ध हो पाता है। कोई भी भाषा-प्रयोक्ता अपनी भाषा प्रयोग क्षमता के आधार पर पर्याय-अनेकार्थक शब्दों को व्यवहार में लाता है। यह भाषा-प्रयोक्ता की भाषा-क्षमता, अभ्यास और अनुभव पर निर्भर करता है कि वह इच्छित अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किस प्रतिशब्द का चयन करता है।

सैद्धांतिक तौर पर, भले ही यह भी स्वीकार किया जाता है कि भाषा में कई शब्दों के पर्याय होते हैं। जबकि, वास्तविकता यह है कि कोई भी शब्द, किसी भी अन्य शब्द का शत-प्रतिशत पर्याय नहीं होता। इसका कारण यह है कि अर्थ की समानता के बावजूद उनके प्रयोग एकसमान नहीं होते हैं। पर्याय शब्द, स्वयं में इतने पूर्ण होते हैं कि वे सभी स्थितियों और संदर्भों में प्रयुक्त नहीं होते। किसी संदर्भ अथवा स्थिति में कोई शब्द उपयुक्त होता है और किसी अन्य संदर्भ-स्थिति में दूसरा प्रतिशब्द। उदाहरण के लिए, आम तौर पर यह माना जाता है कि 'प्रेम', 'प्यार', 'स्नेह', 'प्रीति', और 'अनुराग' आदि शब्द समान भाव की अभिव्यक्ति करते हैं। इसी प्रकार, 'कोमल', 'मृदु', 'मृदुल', 'मुलायम', 'नाजुक', 'नर्म', 'सुकुमार' आदि या फिर 'प्रकाश' के पर्याय 'ज्योति, 'चमक', 'द्युति' और 'प्रभा' शब्दों को देखा जा सकता है, जो कमोबेश एकसमान भाव को ही व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार, अंग्रेजी के 'elucidate' शब्द को देखा जा सकता है जिसके पर्याय के रूप में हमें 'explicate', 'illuminate', 'clarify' और 'elaborate' शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार, 'publicity' के पर्याय के तौर पर 'limelight', 'notoriety', 'spotlight', 'outlet' और 'vent' शब्दों का व्यवहार भी देखा जा सकता है। लेकिन, वास्तविकता यह है कि पर्यायों के रूप में हिंदी अथवा अंग्रेजी के ये शब्द-समूह एक-दूसरे के पर्याय होने के बाजवूद, प्रयोग के स्तर पर इनमें अर्थ भिन्नता स्थापित की जा सकती है। भाषा में शब्दों का प्रयोग करते समय अर्थ की इसी विशिष्टता को बनाए रखा जाता है। उदाहरण के लिए, 'प्रेम' या 'स्नेह' और 'publicity' एवं 'limelight' के जरिए व्यक्त होने वाले अर्थों में शत-प्रतिशत समानता नहीं है। इसीलिए, संदर्भ और परिस्थिति के अनुसार प्रतिशब्दों में से सटीक पर्याय के चयन और प्रयोग की अपेक्षा रहती है। यह अपेक्षा भाषा-प्रयोक्ता के स्तर पर लेखन के संदर्भ में और अनुवादक के स्तर पर अनुवाद में भी की जाती है।

अनुवाद में सटीक शब्द-प्रयोग का महत्व

शब्द जड़ित वाक्यों के रूप में भाषा, भावों और विचारों की अभिव्यक्ति और आदान-प्रदान का आधार है। शब्दों के बिना भाषा का अस्तित्व ही नहीं है और भाषा ही संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। शब्द, संप्रेषित किए गए कथन को अर्थवत्ता प्रदान करते है। इसलिए कथ्य की अभिव्यक्ति करते समय शब्दों का सावधानी से चयन और प्रयोग करना होता है। शब्दों के सटीक चयन से भाषा के जरिए विचारों-भावों का प्रभावपूर्ण संप्रेषण हो पाता है। डॉ. पूरनचंद टंडन के शब्दों में कहें तो 'प्रत्येक शब्द का अपना एक इतिहास होता है, स्रोत होता है और उसकी अपनी एक यात्रा-राह होती है। शब्द ही हृदय जीतने का मंत्र बनता है और शब्द ही महाभारत का कारण भी बनता है।' इसीलिए कहा जाता है कि भाषा-प्रयोग और अनुवाद, दोनों ही स्तरों पर तो शब्दों की नब्ज पहचानते और उसके उच्चावचन को समझते हुए सटीक शब्द का चयन और प्रयोग करना चाहिए। अनुवाद में, वस्तुतः शब्द चयन के स्तर पर विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'maintenance' शब्द को देखा जा सकता है, जिसके लिए हिंदी में 'अनुरक्षण', 'रख-रखाव', 'संभरण' और 'भरण-पोषण' पर्याय उपलब्ध होते हैं। किंतु उनमें से अनुवादक अपने विवेक के अनुसार उपयुक्त पर्याय चयन करता है। जैसे, किसी तलाकशुदा महिला को उसके पूर्व-पति के द्वारा दिए जाने वाले 'maintenance allowance' को किसी भी प्रकार से 'अनुरक्षण' या 'रख-रखाव' नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, 1960 के बाल अधिनियम में 'contribute to maintenance' के लिए 'भरणपोषण के लिए अभिदाय करना' प्रयुक्त किया गया है।

अनुवादक, मूल में प्रत्येक सार्थक शब्द के मुख्यार्थ/अभिधार्थ और लक्ष्यार्थ एवं व्यंजनार्थ को समझने-आत्मसात करने का प्रयत्न करके लक्ष्य भाषा में समभाव को व्यक्त करने वाले प्रतिशब्द का चयन करता है और अनूदित पाठ में उसे प्रस्तुत करता है। मूल के अभिधार्थ और निहितार्थ को लक्ष्य भाषा में यथासंभव सुरक्षित रखना अनुवादक का प्रमुख कर्तव्य होता है। इनके प्रति सजग रहकर ही वह मूल के कथ्य को दूसरी भाषा में रूपांकित कर पाने योग्य हो पाता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'younger brother' का अभिधार्थ अनुवादक से इसका अनुवाद 'छोटा भाई' करवाएगा। लेकिन 'Acid Test' जैसी भाषिक अभिव्यक्ति के अभिधार्थ के साथ-साथ निहितार्थ को भी ग्रहण करने के बाद ही अनुवादक को इसके लिए प्रतिशब्द 'अग्नि परीक्षा' ही रखना होगा। अभिधार्थ और निहितार्थ को पहचानने के बाद सही शब्द प्रयोग करना अनुवाद की कसौटी होती है।

अनुवादक का दो भाषाओं पर अधिकार : सटीक शब्दावली चयन में सहायक

अब तक की गई चर्चा से यह स्पष्ट है कि कोई भी भाषा-प्रयोक्ता अपनी भाषा-क्षमता, अभ्यास और अनुभव क्षमता के आलोक में इच्छित अर्थ को व्यक्त करने के लिए पर्याय-अनेकार्थक शब्दों को व्यवहार में लाता है। यही स्थिति सर्जनात्मक लेखन कर्म करने वाले रचनाकारों की

है जो अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के बल पर और भाषा-क्षमता, अभ्यास एवं अनुभव क्षमता के आलोक में शब्द प्रयोग करता है। वहीं, अनुवाद करते समय अनुवादक जब स्रोत भाषा-प्रयोक्ता के द्वारा व्यवहृत शब्दों का साक्षात करता है तो ये भी 'bump in the road' सिद्ध होते हैं, उसके मार्ग में बाधाएँ खड़ी करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अनुवाद कर्म यात्रा में अनुवादक को शब्द-पर्यायता और अनेकार्थता की स्थितियों से गुजरना होता है और कथ्य के सही-सही संप्रेषण के लिए उपयुक्त पर्याय चयन एवं प्रयोग करना होता है।

'अनुवादक का दो भाषाओं पर अधिकार' सटीक शब्दावली चयन में सहायक सिद्ध होता है। अनुवाद की शब्दावली में इन दोनों भाषाओं को 'स्रोत भाषा' और 'लक्ष्य भाषा' कहा जाता है। किसी भी भाषा-प्रयोक्ता की भाषा-क्षमता की भाँति यह अनुवादक की अनुवाद-क्षमता, अभ्यास और अनुभव पर निर्भर करता है कि वह मूल में निहित अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए लक्ष्य भाषा में उपलब्ध पर्यायों में से किस शब्द की, अर्थ के धरातल पर, किस प्रतिशब्द के साथ निकटता को ध्यान में रखते हुए सटीक शब्द चयन-प्रयोग करता है। दोनों भाषाओं पर अपने इसी अधिकार के कारण अनुवादक उस प्रतिशब्द का चयन करता है जो मूल के निकटतम समतुल्य सिद्ध हो। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'adverse' शब्द के पर्याय के रूप में हमें 'unfavourable', 'antagonistic', 'detrimental', 'prejudicial', 'hostile' और 'aversive' शब्द मिलते हैं। इस तथ्य को समझने के लिए 'बॉलीवुड फिल्म अभिनेता सलमान खान, काले हिरन के अवैध शिकार मामले में दोषी पाए गए।' वाक्य को देख सकते हैं। यदि इस वाक्य का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाए तो हमें 'अवैध शिकार' शब्द की ओर विशेष तौर पर ध्यान देना होगा। यदि 'अवैध शिकार' के लिए अंग्रेजी समतुल्य खोजे जाएँ तो हमें 'hunt illegally/ intrusion/transgression' आदि प्राप्त होते हैं। किंतु इनके स्थान पर यदि 'poaching' शब्द का प्रयोग किया तो वह ज्यादा सार्थक प्रतीत होता है। इस शब्द को प्रयुक्त करते हुए उक्त हिंदी वाक्य का अंग्रेजी अनुवाद होगा -- 'Bollywood film actor Salman Khan has been found guilty in the blackbuck poaching case.' ।

भाषा-भंडार और सार्थक-सटीक शब्द चयन : किसी भी भाषा का शब्द-भंडार, उसकी भाषिक समृद्धता का परिचायक होता है। किसी भी भाषा-भाषी समाज में भाषिक शब्द संपदा की अभिवृद्धि के लिए लोग व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के प्रयास करते हैं। इसके अलावा, सरकारी स्तर पर प्रयास किए जाते हैं। कोई भी भाषा अपनी शब्द निर्मिति के भाषिक नियमों के आधार पर या संपर्क में आई अन्य भाषाओं से शब्द को यथावत ग्रहण कर या फिर अपनी भाषा के अनुरूप उसका अनुकूलन करके अपने शब्दावली भंडार को समृद्ध-संपन्न करती है। उदाहरण के लिए, हिंदी का शब्द भंडार तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों को अपने में शामिल कर समृद्ध और संपन्न हुआ है। इसके अलावा, उपसर्ग-प्रत्यय, संधि-समास और मिश्र पद्धति प्रयोग आदि के द्वारा भी इसमें नए-नए शब्द गढ़े गए हैं। वहीं, अनुवाद की प्रक्रिया को भी माध्यम बनाकर शब्दावली भंडार में अभिवृद्धि की प्रवृत्ति नजर आती

है। उदाहरण के लिए, blak economy -- काली अर्थव्यवस्था, black list -- काली सूची, silver medal -- रजत पदक, diamond jubilee -- हीरक-जयंती आदि।

भारत में हिंदी भाषा की शब्द संपदा को बढ़ाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 351 में उल्लेख मिलता है। संविधान में व्यक्त हिंदी के विकास संबंधी निर्देशों की भावना को ध्यान में रखते भारत सरकार ने वर्ष 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (Commission for Scientific and Technical Terminology) की स्थापना की थी। आयोग ने आवश्यकता के अनुसार अंगीकरण, अनुकूलन, नवनिर्माण तथा अनुवाद की प्रक्रिया के आधार पर पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है तथा निरंतर कर रहा है। यह हिंदी भाषा की शब्द संपदा के विकास का सूचक तो है ही, भाषा को प्राण-वायु प्रदान करने का आधार भी है। हिंदी की यह शब्द संपदा ही उसे नए अर्थ-संदर्भों से जोड़ती है, भाषिक अभिव्यक्ति को नए आयाम और तेवर प्रदान करती है।

शब्दों का वैविध्य, भाषिक अभिव्यक्ति को नए और रचनात्मक आयाम प्रदान करता है। कोई भी भाषा-प्रयोक्ता और विशेष तौर पर रचनाकार अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के बल पर भाषा के शब्द भंडार में से सार्थक शब्दों का चयन कर अपनी कृति में शब्द-जाल बुनता है। वह एक ही प्रकार के अर्थ को व्यक्त करने के लिए शब्द प्रयोग के स्तर पर विविधता लाता है। उदाहरण के लिए, 'यहाँ गाड़ी खड़ी करने की अनुमति नहीं है।', 'यहाँ गाड़ी खड़ी करना मना है।', 'यहाँ गाड़ी खड़ी करना वर्जित है।' आदि वाक्य भिन्न शब्द-प्रयोग के द्वारा एक ही भाव को व्यक्त करते हैं। हिंदी भाषा में शब्दबद्ध ये सभी भाषिक अभिव्यक्तियाँ एक ही अर्थ को व्यंजित कर रही हैं। अगर अनुवादक केवल उसी अर्थ को ही ध्यान में रखेगा तो कठिनाई पैदा हो जाएगी। लक्ष्य भाषा के शब्द भंडार में से उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करते हुए अनुवादक जो अनुवाद करेगा, वह कदाचित इस प्रकार होगा :

- 'यहाँ गाड़ी खड़ी करने की अनुमति नहीं है।' : Car parking is not permitted here.
- 'यहाँ गाड़ी खड़ी करना मना है।' : Car parking is not allowed here.
- 'यहाँ गाड़ी खड़ी करना वर्जित है।' : Car parking is prohibited here.

पर्यायता/अनेकार्थता की स्थिति और सटीक शब्दावली चयन

किन्हीं दो भाषाओं की प्रकृति और साहचर्य पूरी तरह से एक जैसा नहीं होता। इसलिए किसी एक भाषा के शब्द के लिए दूसरी भाषा में उपयुक्त-सटीक शब्द कम ही मिलते हैं। वैसे भी, एक ही भाषा के भी किन्हीं दो शब्दों के अर्थ पूरी तरह से एक जैसे नहीं होते; उनमें सूक्ष्म अर्थ-भेद व्याप्त होता है। जैसे, 'अनुपम', 'अपूर्व', 'अनोखा', 'अद्‌भुत', 'अनूठा', 'अद्वितीय', 'अतुल' शब्दों में भाव के धरातल पर भले ही समानता नजर आए, लेकिन उनमें परस्पर सूक्ष्म अर्थ-भेद भी व्याप्त है। यह अर्थ-भेदकता भाषा प्रयोग के स्तर पर देखी जा सकती है। इसी प्रकार के सूक्ष्म अर्थ-भेद अंग्रेजी के भी देखे जा सकते हैं। जैसे, 'emotion', 'excitement', 'feeling', 'passion', 'perturbation', 'sentiment', 'trepidation' आदि।

वास्तव में अनुवाद कार्य के दौरान, अनुवादक पर्यायता और अनेकार्थता की स्थितियों में से गुजरता है। इसका कारण यह है कि स्रोत भाषा के एक शब्द के प्रतिशब्द के रूप में लक्ष्य भाषा में एक से अधिक अथवा अनेक शब्दों की उपलब्धता की संभावना हो सकती है। इसी प्रकार, स्रोत भाषा के अनेक शब्दों को लक्ष्य भाषा में एक शब्द से ही व्यक्त करने की स्थिति भी हो सकती है। ऐसी स्थिति-परिस्थिति में प्रतिशब्द का चयन और प्रयोग अनुवाद के समक्ष चुनौती खड़ी करता है। ये स्थितियाँ भाषाओं में अतिभेदकता और अल्पभेदकता को दर्शाती हैं और पर्याय चयन में कठिनाई पैदा करती हैं।

यदि स्रोत भाषा के किसी एक शब्द/कोटि के संपूर्ण अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए लक्ष्य भाषा में दो अथवा दो से अधिक समानार्थी शब्दों के प्रयोग किया जाए तो वह 'अतिभेदकता' (over-differentiation) है, जिसे 'अतिकोटिकरण' भी कहते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'handsome' और 'beautiful' शब्दों के अर्थ के आधार पर हिंदी में इन दोनों शब्दों का समतुल्य शब्द है -- 'सुंदर'। यह स्थिति भाषा में अतिभेदकता का द्योतक है। इसी प्रकार, अंग्रेजी के 'condolence', 'sorrow', 'mourn', 'grief', 'bereavement' एवं 'sad' शब्दों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसके लिए लक्ष्य भाषा हिंदी में 'शोक' प्रतिशब्द उपलब्ध होता है।

वहीं दूसरी ओर, यदि स्रोत भाषा के किसी शब्द/कोटि के एक से अधिक अर्थों को व्यक्त करने के लिए लक्ष्य भाषा में एक ही समानार्थी शब्द का विधान हो तो वह 'अल्पभेदकता' (under-differentiation) है, जिसे 'अल्पकोटिकरण' भी कहते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी में 'snow' एवं 'ice' शब्द के लिए हिंदी का 'बर्फ' शब्द या फिर 'thick' और 'fat' शब्दों के लिए हिंदी में केवल 'मोटा' शब्द की उपलब्धता अतिभेदकता की स्थिति है। इस तरह की (अल्पभेदता और अतिभेदकता भी) स्रोत और लक्ष्य भाषा के भाषिक स्तर पर हों, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में भी देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'lunch' और 'dinner' शब्दों के लिए हिंदी में केवल एक ही शब्द की उपलब्धता -- 'भोजन'। वैसे अब वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने इन दोनों के लिए अलग-अलग पारिभाषिक शब्द कर दिए हैं -- 'मध्याह्न-भोजन' (lunch) और 'रात्रि भोजन' (dinner). हिंदी और अंग्रेजी भाषा-संस्कृति से संबद्ध रिश्ते-नाते की शब्दावली के स्तर पर भी यह अल्पभेदकता नजर आती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'uncle' शब्द के अर्थ के स्थान पर हिंदी में 'चाचा', 'मामा', 'मौसा', 'फूफा' जैसे पर्याय मिलते हैं। यह स्थिति भाषाओं में अल्पभेदकता की ही द्योतक हैं।

अब तक की गई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा प्रयोग और अनुवाद कर्म में सटीक शब्द चयन एवं प्रयोग का विशेष महत्व है। अनुवादक का स्रोत और लक्ष्य भाषाओं पर अधिकार, सटीक शब्दावली के चयन और प्रयोग करने में सहायक होता है।

सटीक शब्दावली का चयन प्रयोग : ध्यातव्य पक्ष

हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं कि शब्दों की विविधता से भाषिक अभिव्यक्ति को नए और रचनात्मक आयाम प्राप्त होते हैं, लेकिन विविध शब्द प्रयोग का यही पक्ष अनुवादक के समक्ष

सार्थक-सटीक शब्दावली के चयन एवं प्रयोग की बाधाएँ भी प्रस्तुत करता है। ऐसे में अनुवादक को जिन पक्षों को ध्यान में रखते हुए सटीक शब्दावली का चयन और प्रयोग करना चाहिए, उनमें से कुछ प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं -- क्षेत्र-विशेष की सार्थक-सटीक शब्दावली प्रयोग; संदर्भ के अनुरूप सटीक शब्द चयन; और सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों के संदर्भ में सटीक शब्दावली चयन।

क्षेत्र-विशेष की सार्थक-सटीक शब्दावली प्रयोग : क्षेत्र के स्तर पर भाषा-प्रयोग में आम तौर पर भिन्नता देखी जाती है। प्रशासन की भाषा, वाणिज्य-व्यापार की भाषा से भिन्न होती है। इसी प्रकार, साहित्यिक भाषा और जनसंचार माध्यमों की भाषा में साफ तौर पर अंतर नजर आता है। अगर हम 'अग्रदाय लेखा' (imprest account), 'दक्षता रोध' (efficiency bar), 'अधिसूचित रिक्ति' (notified vacancy), 'प्रतिभूति जमा' (security deposity) जैसी शब्दावली या फिर 'पदभार ग्रहण करना', 'मसौदा अनुमोदनार्थ प्रस्तुत', 'बिल हस्ताक्षरार्थ प्रस्तुत', 'कृपया नियत नियत तारीख से पहले इसका पालन किया जाए' जैसी अभिव्यक्तियों का ही उल्लेख करें तो यह जाएगा कि इस प्रकार का भाषा-प्रयोग हमें प्रशासन के क्षेत्र में, कामकाज के स्तर पर व्यवहार में नजर आता है -- किसी अन्य भाषा प्रयोग क्षेत्र में नहीं। भाषा प्रयोग के क्षेत्र की भिन्नता के कारण शब्दावली प्रयोग में भिन्नता नजर आती है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र विशेष की अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है। इसी प्रकार, 'passbook', 'cheque', 'draft', 'ledger', 'capital', 'investment', 'withdrawal', 'overdraft', 'bill', 'voucher' आदि वाणिज्य-बैंकिंग क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली का उल्लेख किया जा सकता है, जिनका अन्य भाषा-प्रयोग क्षेत्रों में या तो व्यवहार नहीं किया और यदि किसी अन्य क्षेत्र में भी किया जाता है तो जरूरी नहीं कि उसका अर्थ-संदर्भ भी समान ही हो।

भाषा के व्यवहार-क्षेत्र के अनुसार समुचित पर्याय का चयन अनुवादक के अनुवाद कर्म की कसौटी होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि अनुवाद में सटीकता लाने अथवा परिशुद्ध अनुवाद करने के लिए अनुवादक से यह अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य भी होता है कि वह भाषा-प्रयोग के क्षेत्र के अनुसार, शब्दावली के स्तर पर इस प्रकार के वैशिष्ट्य को बनाए रखे। उदाहरण के लिए, यदि हम 'bill' शब्द की ही बात करें तो वाणिज्य-व्यापार आदि के संदर्भ में यह 'बिल' के रूप में प्रयुक्त किया जाता है और विधि-विधायन में 'विधेयक' अर्थ का व्यंजक है। इसी प्रकार, अंग्रेजी के 'principal' शब्द का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसके लिए शिक्षा (और विशेष तौर पर कॉलेज) के संदर्भ में 'प्राचार्य', प्रशासन के संदर्भ में 'प्रधान' का, तथा बैंकिंग जगत में 'मूलधन' पर्याय का प्रयोग किया जाता है। और सामान्य संदर्भ में भी देखें तो 'principal' के लिए 'मालिक', 'स्वामी' आदि शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण और संबंधित क्षेत्र के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न हिंदी पर्याय प्रयोग इस प्रकार हैं :

मूल शब्द	**संबंधित क्षेत्र**	**हिंदी पर्याय**
'concordance'	सामान्य	सुसंगतता, मैत्री, ऐक्य
	पुस्तकालय विज्ञान	विषयानुक्रमणिका, पदानुक्रमणी

	भाषाविज्ञान	अन्वय, संगति
	भूविज्ञान	अनुस्तरता
	भौतिकी	संवादिता
'eponym'	सांस्कृतिक नृविज्ञान	नामस्रोत
	भाषाविज्ञान	कृतिनामा पात्र
'epithet'	इतिहास	विशेष नाम, उपाधि
	पुस्तकालय विज्ञान	नाम विशेषण
	भाषाविज्ञान	विशेषण
	वनस्पतिविज्ञान	संकेतपद, विशेषण
'grafting'	संचार	संशोधन
	समाजशास्त्र	घूसखोरी, रिश्वतखोरी
	वनस्पतिविज्ञान, गृहविज्ञान	रोपण, कलम बांधना

संदर्भ के अनुरूप सटीक शब्द चयन : मूल भाषा का एक शब्द, संदर्भ अथवा प्रसंग के अनुसार अलग-अलग अर्थों को ध्वनित करने का आधार बन जाता है। इसलिए, अनुवाद करते समय अनुवादक को संदर्भ के प्रति भी विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है; भिन्न प्रतिशब्द का चयन और प्रयोग करना होता है। उदाहरण के तौर पर, अंग्रेजी के 'head' शब्द का उल्लेख किया जा सकता है, जो मानव-शरीर के एक भाग (अर्थात 'सिर') के लिए प्रयुक्त किया जाता है। लेकिन, संस्था अथवा विभाग के संदर्भ में यह 'प्रमुख' का द्योतक है। इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न संदर्भों में 'head' शब्द के प्रयोग और उनके लिए हिंदी में व्यवहार में लाए जाने वाले भिन्न प्रतिशब्दों को उदाहरण के लिए देखें :

head master	मुख्याध्यापक
head office	प्रधान कार्यालय
head constable	हैड कांस्टेबल
head light inspector	बड़ी बत्ती निरीक्षक
head ornament	अभिशीर्ष अलंकरण
head-phone	शीर्षफोन, हेडफोन
head quarters	मुख्यालय
head rest	तकिया
head tax	व्यक्ति कर
head trophy	मुंड विजयोपहार
head way	शीर्षांतर
head of account	लेखा-शीर्ष
head of department	विभागाध्यक्ष
head of a delegation	शिष्टमंडल प्रमुख, प्रतिनिधिमंडल प्रमुख

head of revenue	राजस्व-शीर्ष
head of the household	गृहपति
head of the table	मेज का ऊपरी हिस्सा
head on collision	सामने की टक्कर

'Head' शब्द के उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त हम अंग्रेजी के एक अन्य शब्द 'transfer' का भी उल्लेख कर सकते हैं। 'transfer' 'स्थानांतरण', 'हस्तांतरण', 'अंतरण' आदि अर्थ संदर्भों से जुड़ा हुआ शब्द है। इसी प्रकार, अंग्रेजी में 'run' शब्द को भी देखा जा सकता है। इस शब्द का संज्ञा (noun) और क्रिया (verb), दोनों रूपों में प्रयोग संभव है। संज्ञा रूप में इसके प्रयोग देखिए :

- Which run did you do today? (i.e. the route taken while running)
- I just got back from my evening run. (Act/instance of running)
- I need to make a run to the shop. (act/instance of hurrying)
- Let's go for a ran in the car. (a pleasure trip)

इसके अलावा, अगर हम 'run' शब्द के क्रिया (verb) रूप में ही व्यवहार को देखें तो पता चलता है कि यह शब्द 'दौड़ना', 'दौड़ाना', 'चलना', 'चालू रहना', 'चलाना', 'बहते रहना', 'संचालित करना', 'फैलना', 'चुनाव में खड़े होना' और 'दौड़ में भाग लेना' आदि अनेक अर्थों का व्यंजक बन जाता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के निम्नलिखित वाक्य (run) शब्द के जिस अर्थ का व्यंजक है, देखिए :

- She is running fast. (दौड़ना)
- Daily, I run my dog across the field and back (दौड़ाना)
- The charted bus is running regularly. (चलना)
- The old machine is running smoothly. (चालू रहना, चलना)
- My uncle ran a business for 30 years. (चलाना)
- The tap is running constantly. (बहते रहना)
- He is running his business well. (संचालित करना)
- The rumour is running across the country. (फैलना)
- I have decided to run for MLA election. (चुनाव में खड़े होना)
- He ran his best horse in the horse-race. (दौड़ में भाग लेना)

सटीक शब्दावली चयन : सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों का संदर्भ

भाषा केवल शब्दों के द्वारा और वाक्यों के रूप में विचारों और भावों की अभिव्यक्ति का ही साधन नहीं है। भाषा से संस्कृति का भी संप्रेषण होता है। भाषा के शब्द, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों से भी युक्त होते हैं। इनके अंतर्गत खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, पर्वोत्सवों, तीज-त्यौहार, आदरार्थ भावों की अभिव्यक्तियाँ शामिल हैं। इसलिए यह स्वीकार किया जाता है कि भाषा और

संस्कृति का अटूट संबंध है। अपने समाज-संस्कृति में रचे-पचे होने के कारण लेखक के रचना कर्म की भाषा में इस प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व जाने-अनजाने स्थान प्राप्त करते चलते हैं। उदाहरण के लिए, अगर कोई लेखक यह लिखता है कि 'मुझे उस समय बड़ी खुशी हुई जब अज्ञेय जी हमारे घर पधारे/पर आए।' इस वाक्य में प्रयुक्त 'घर पधारे' अथवा 'घर पर आए' शब्द विशेष तौर पर ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि इनके जरिए भाषा का आदरार्थ प्रयोग (honorific use of language) किया गया है। अगर इसे आदरार्थ प्रयोग न समझा जाए तो 'आए' जैसा शब्द 'आया' का बहुवचन रूप का द्योतक होगा। उस स्थिति में अज्ञेय (जी) एक व्यक्ति विशेष न होकर कई व्यक्तियों के भाव को व्यंजित करेगा। जबकि वास्तविकता यह है कि उक्त वाक्य में 'अज्ञेय' एकवचन का द्योतक है और यह हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के लिए प्रयुक्त एकवचन संज्ञा शब्द है। स्पष्ट है कि इस वाक्य में अज्ञेय जी के प्रति आदर-भाव को व्यक्त करने के लिए उसे बहुवचन रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों का एक अन्य आयाम लक्ष्य भाषा की संस्कृति से जुड़ा हुआ है। इसे स्पष्ट करने के लिए, उदाहरण के तौर पर, यह कहा जा सकता है कि कोई भी अंग्रेजी भाषी अपनी महिला-मित्र के लिए 'Dear Ms./Mrs....' शब्दों का प्रयोग सहज रूप से कर सकता है, जबकि हिंदी में 'प्रिय सुश्री/श्रीमती...' का प्रयोग असहज प्रतीत होता है। इस तरह, यह कहा जा सकता है कि अनुवादक को भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों की ओर भी ध्यान देना होता है और उसी को ध्यान में रखते हुए सटीक समतुल्य शब्दावली का चयन करना होता है।

उल्लेखनीय है कि किसी भी भाषा का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, उस भाषा विशेष की भाषा-शैली को भी विशिष्ट बना देता है। इस कारण अनुवाद के स्तर पर भाषिक सांस्कृतिकता की प्रस्तुति हो जाती है। उदाहरण के लिए, 'Please take you seat.' को देखा जा सकता है। इस प्रकार के वाक्य के हिंदी में 'कृपया बैठिए।', 'कृपया विराजिए'। 'मेहरबानी करके बैठिए।', 'मेहरबानी करके तशरीफ रखिए।' या फिर 'बराए करम तशरीफ रखिए।' आदि कई अनुवाद किए जा सकते हैं। ये सभी अनुवाद, हिंदी भाषा की शैली के वैशिष्ट्य के उद्घोषक ही सिद्ध होते हैं।

अनुवाद करते समय सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दों के लिए प्रतिशब्द का चयन और प्रयोग भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के रिश्ते-नाते से जुड़े शब्द 'uncle' के लिए हिंदी में जहाँ 'चाचा', 'ताऊ', 'मामा', 'मौसा', 'फूफा' जैसे संस्कृतिमूलक शब्द मिलते हैं, वहीं 'aunt' शब्द के लिए 'चाची', 'ताई', 'बुआ', और 'मौसी' शब्द उपलब्ध हैं। अनुवादक को 'uncle' और 'aunt' जैसे शब्दों के प्रति संदर्भ के अनुसार, प्रतिशब्द का चयन और प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार, 'father' के लिए 'पिताजी', 'mother' के लिए 'माता जी', और 'sister' के लिए 'बहन' शब्दों के प्रयोग का उल्लेख किया जा सकता है। लेकिन, इन समतुल्य हिंदी शब्दों के स्थान पर हम 'फादर कामिल बुल्के', 'मदर टेरेसा' और 'सिस्टर निवेदिता' आदि जैसे शब्द (लिप्यंतरित रूप में) प्रयोग ही करते हैं। इसी प्रकार, 'पिज़्ज़ा', 'बर्गर', 'चाउमीन',

'इडली', 'डोसा' और 'संदेश' (बंगाली मिठाई) आदि खान-पान की शब्दावली का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो किसी विशिष्ट भाषा-समाज की ओर संकेत करते हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ी कुछेक ऐसी शब्दावली भी नजर आती है, जिसका लक्ष्य भाषा में प्रतिशब्द मिल ही नहीं पाता। अष्टमी पूजन, करवा चौथ, शिवरात्रि/रामनवमी का व्रत, त्यौहार, पर्व, उत्सव, खान-पान, रहन-सहन आदि से जुड़ी सांस्कृतिक शब्दावली के लिए भिन्न संस्कृति वाली भाषाओं में प्रतिशब्द संभव ही नहीं है। ऐसी शब्दावली की लक्ष्य भाषा में अनुवादक को व्याख्या करके काम चलाना पड़ता है। भिन्न संस्कृति वाली भाषाओं में सांस्कृतिक शब्दावली के सटीक प्रतिशब्द की अनुपलब्धता का अंग्रेजी के संदर्भ में भी उल्लेख किया जा सकता है। वहाँ के 'dating', 'Good Friday' आदि अंग्रेजी समाज-संस्कृति के शब्दों के लिए हमें हिंदी प्रतिशब्द नजर ही नहीं आते।

निष्कर्ष

अनुवाद, स्रोत भाषा के वाक्य-साँचे में शोभाएमान शब्दों के कथ्य-भाव की लक्ष्य भाषा में प्रस्तुति संबंधी व्यावहारिक गतिविधि है और अनुवादक लक्ष्य भाषा-प्रयोक्ता वर्ग के कथ्य की प्रस्तुति करने का माध्यम। किसी भी भाषा-प्रयोक्ता (मूल लेखक) की भाँति अनुवादक भी एक सच्चे साधक के रूप में कर्मरत रहकर अपनी अनुवाद-क्षमता, अभ्यास और अनुभव के बल पर शब्द-साधना करता है, अनुवाद करता है। उसकी इस शब्द-साधना में सार्थक-सटीक शब्दावली चयन और प्रयोग साध्य बनते हैं। भाषा के समृद्ध-संपन्न शब्द भंडार में से सार्थक-सटीक शब्दावली का चयन, उसके लिए चुनौतियाँ खड़ी करते हैं। अनुवादक, पर्यायता और अनेकार्थता की स्थितियों में से गुजरता है। यह स्थिति स्रोत भाषा के एक शब्द के प्रतिशब्द के रूप में लक्ष्य भाषा में अनेक शब्दों (अतिभेदकता) का आयाम लिए हुए भी हो सकती है या फिर स्रोत भाषा के अनेक शब्दों को लक्ष्य भाषा में एक शब्द से ही व्यक्त करने संबंधी (अल्पभेदकता) की भी हो सकती है। ऐसे में प्रतिशब्द का चयन और प्रयोग अनुवादक की अनुवाद दक्षता पर निर्भर करता है। शब्दों के माध्यम से भाषा की अर्थ-छटा बदल जाती है। देशज शब्द की गंध, संस्कृतिनिष्ठ शब्द के माध्यम से व्यक्त स्रोत भाषा की संस्कृति अथवा विदेशी शब्द की चुनौती भी अनुवादक के समक्ष किसी भी तरह से कमतर नहीं होती है। ऐसे में अनुवादक को सार्थक-सटीक शब्द चयन एवं प्रयोग करने के प्रति विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। इसीलिए यह स्वीकार किया जाता है कि अनुवाद में सार्थक शब्दों के चयन एवं प्रयोग का विशेष महत्व है। मूल के समतुल्य और सटीक पर्याय का चयन-प्रयोग, अनुवाद की सहजता और ग्राह्यता की अनिवार्य अपेक्षा है। इसके अभाव में सार्थक अनुवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। अनुवादक अपनी विशेषज्ञता, ज्ञानानुभव, मर्मज्ञता और कल्पनाशीलता के बल पर और सटीक पर्याय का चयन एवं प्रयोग करके मूल का-सा आनंद की अनुभूति कराने वाला सहज अनुवाद-कर्म कर पाने योग्य हो पाता है।

❑

डॉ. रणजीत साहा

नागार्जुन की बांग्ला कविताएँ और उनका अनुवाद

बाल्यकाल से ही बंगाक्षर और मिथिलाक्षर (तिरहुत) के साथ नागरी लिपि से समान रूप से परिचित नागार्जुन में स्वयं को अभिव्यक्त करने की अभूतपूर्व क्षमता थी। यद्यपि, उनके संपादक पुत्र शोभाकांत के अनुसार किशोरावस्था में उनकी शिक्षा संस्कृत की समस्या पूर्ति शैली से हुई थी। उन्होंने काशी में तीन वर्ष में 'मध्यमा' का पाठ्यक्रम पूरा किया और फिर युवावस्था में संस्कृत में गति बनाए रखने के लिए इसमें कई लघु रचनाएँ भी कीं। इसी क्रम में उन्होंने 1933 में कलकत्ता के गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज में 'काव्यतीर्थ' की परीक्षा के लिए नामांकन करवाया था और वे वहाँ कोई साल भर रहे। निस्संदेह वहाँ उनका बांग्ला साहित्य से भी परिचय हुआ।

नागार्जुन के बांग्ला में स्वाध्याय का ही परिणाम था कि युवावस्था में कलकत्ता-प्रवास के दौरान उन्होंने चर्चित एवं परिचित बांग्ला रचनाकारों की रचनाओं को सम्मानपूर्वक पढ़ा था। ऐसा न होता तो जोगेंद्रनाथ सरकार की लगभग पचास साल पहले लिखित एक अत्यंत परिचित बाल कविता, जिसमें हाराधन के एक-एक कर उसके दसों बेटों के मरने-धरने का उल्लेख है, का अनुसरण कर वे इसी वजन की कविता नहीं लिखते :

दशटि छेले

हाराधनेर दशटि छेले घोरे पाड़ामय
एकटि कोथा हारिये गेल रइल बाकि नय

हाराधनेर सातटि छेले गेल जलाशय
एकटि सेथा डूबे मरल रइल बकि छय

हाराधनेर दुईटि छेले मारते गेल भेक
एकटि मरल सापेर विषे रइल बाकि एक।

हाराधनेर एकटि छेले काँदे भेउ भेउ
*मनेर दुःखे बने गेल रइल ना आर केउ।**

* जोगेंद्रनाथ सरकार, *हासि खुसि*, शिशु साहित्य संसद, कलकत्ता

पाँच पूत भारत माता के

पाँच पूत भारत माता के दुश्मन था खूंखार।
गोली खाकर एक मर गया, बाक़ी रह गए चार।।
एक पुत्र भारत माता का कंधे पर है झंडा।
पुलिस पकड़ कर जेल ले गई, बाक़ी रह गया अंडा।।

संस्कृत में छंद रचना करते हुए इसके विन्यास, व्याकरण और व्यवस्था -- जिसमें उपयुक्त शब्दावली पर विशेष जोर रहता है, कविमना नागार्जुन के लिए एक रोचक उपक्रम बन गया था। उनका मानना था -- ''संस्कृत काव्यों की जो बृहत्तर रचना भूमि है, वह जब हमारे सामने आती है तो फिर हिंदी-बांग्ला-मैथिली वाला -- वो सब हम भूल जाते हैं। दिमाग से हटाना पड़ता है उसे।'' एक रचनाकार के नाते किसी भी कवि को भाषा विशेष की व्यवस्था और गरिमा का ध्यान तो रखना ही पड़ता है। लेकिन एक पाठक के नाते, विशेषकर कवि नागार्जुन की काव्य मनीषा को, समग्रता में पाने के लिए उनके द्वारा विरचित विभिन्न भाषाओं की सामग्री को विलगाकर ही पढ़ना होगा।

नागार्जुन लिखित एवं मुद्रित बांग्ला कविताओं की संख्या 31 है। नागार्जुन ने इन कविताओं को 19 फरवरी 1978 से 5 सितंबर 1979 के दौरान लिखा। अंतिम कविता, जिसका शीर्षक 'बोकामिर एइ जज्ञ' (बेवकूफी का यज्ञ) है, एक लंबे अंतराल के बाद 13 मार्च 1992 को लिखी गई थी। वर्ष 1997 में 'आमि मिलिटारिर बुड़ो घोड़ा' *(मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा)* शीर्षक से नागार्जुन का बांग्ला कविताओं का हिंदी अनुवाद देवनागरी लिप्यंतर के साथ छपा। इन कविताओं का बांग्ला अनुवाद शोभाकांत ने किया था। (प्रस्तुत आलेख में हिंदी अनुवादों को ही आधार बनाया गया है।)

बांग्ला की इन कविताओं का रचाव नागार्जुन के कवि स्वभाव के अनुरूप ही हुआ है। भावना का ज्वार उन्हें जिस ओर बहा ले गया, कविता उसी दिशा में यात्रा पर निकल गई। पहली ही कविता, जिसका शीर्षक है 'आचमका होलो भाग्योदय' (अचानक हुआ भाग्योदय) में कवि याद कर रहा है कि उस 'मलका-ए-तरन्नुम' नूरजहाँ की सुमधुर स्वर लहरी को, जो उन्हें रेडियो पाकिस्तान से सुनाई दी :

कजरारी अँखियों में निंदिया न आए
जिया घबराए
पिया नहीं आए
कजरारी अँखियों में... सारे दिन सारी रात
गूँजती रहीं
मेरे कर्ण कुहरों में
गीत की कड़ियाँ
हुआ अचानक भाग्योदय

कई वर्षों बाद
कल या कि परसों!

इस संग्रह में नागार्जुन की भावात्मक यात्रा बाल्य प्रेम से लेकर परिणत वय के प्रौढ़ प्रेम तक देखी जा सकती है। 'भालोबासार आदान-प्रदान' (प्यार का आदान-प्रदान) कविता में स्मृति-प्रवण कवि ने नौ साल की एक लड़की से तेरह साल के लड़के का नवोदित प्रेम व्यक्त किया है। बालक उसका प्रथम हृदयेश्वर है और बालिका उसकी प्रथम प्राणवल्लभा। यद्यपि यह प्रेम केवल छह या चार महीने ही टिक पाया। कवि ने एक जोड़ी हरसिंगार की बूढ़ी झाड़ी को यहाँ साक्ष्य के तौर खड़ा किया है, जो और कोई नहीं, स्वयं कवि का प्रतिरूप है। उसे आज भी याद है कि उस निर्मल प्रेम के नैवेद्य एवं निर्माल्य में क्या कुछ अर्पित किया जाता रहा :

नैवेद्य के नाम पर
बासी जलेबी के आधे टुकड़े में
कैसा अपूर्व स्वाद
निर्माल्य के नाम पर
म्लान गुलाब की शीर्ण पंखुड़ियों में
कैसा अनुपम सौरभ
साक्षी बनी रहती
एक हरसिंगार की बूढ़ी झाड़ी
ग्रीष्म की प्रॅलबित निशीथ में !

यहाँ अपने प्रेमास्पद को बासी जलेबी का आधा टुकड़ा किसकी ओर से अर्पित किया जा रहा है, इस बारे में कवि मौन है। उसका अपूर्व आस्वाद ही नहीं, म्लान गुलाब की सूखी पंखुड़ियों में निहित अनुपम सौरभ भी वह भुलाए नहीं भूल पाता।

ऐसी ही स्मृतिजन्य या स्मृति में जीवित एक कविता है -- 'दीप्त सीमंत' -- यानी सिंदूर से शोभित माँग। कवि इस बात को लेकर परेशान है कि उसने बालिका वधू के जिस जगह पर सिंदूर डाला था, वह जगह अब दिखाई नहीं पड़ती। वृद्धावस्था ने उसे विस्थापित कर दिया है। कवि उसका संधान नहीं कर पाता। जो वस्तुस्थिति कवि के चेतना पटल में अब भी झिलमिलाती है, वह अब पुराकालीन स्मृति में परिणत हो चुकी है। अब उसे अपनी किशोरी वधू की दीप्त माँग की -- उस सद्यःसिंदूरित सीमंत रेख का पता नहीं चल पाता :

कैसे करूँ उस जगह का संधान
जहाँ पहले पहल
लगाया था सिंदूर तुम्हारा वह कुंतलित भाल
अब तो हो रहा है मात्र
पुरातत्त्व-स्मृति जबकि इस चेतना पटल पर
अब भी है झिलमिल तुम्हारी वह सद्यःसिंदूरित माँग

जब कि अब रेख वह नहीं मिलती
उस एक किशोरी की उस दीप्त माँग की!

यहाँ स्वभावतः कवि नागार्जुन द्वारा 1948 में लिखित कविता की सुप्रसिद्ध पंक्तियाँ -- 'सिंदूर तिलकित भाल' हमारी स्मृति में कौंध जाती हैं।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.एन.यू.) के प्रति कवि नागार्जुन की गहरी ललक उनकी एक कविता एइ जे.एन.यू. में प्रकट हुई है। उन्होंने यह कविता 19 फरवरी 1979 को लिखी थी, जबकि तक तक इसे विश्वविद्यालय को स्थापित हुए अधिक समय नहीं हुआ था। लेकिन इसके प्रशांत परिसर और उन्मुक्त शैक्षणिक परिवेश के साथ युवा अध्येता एवं छात्र-छात्राओं की निर्बाध जीवन शैली ने कवि को बहुत प्रभावित किया था। प्रगतिशील मोर्चे और वामपंथ के निकट होने के कारण तब कवि ने यहाँ एक छात्र के नाते तिब्बती भाषा में अध्ययन करने की इच्छा भी जताई थी :

सोचता हूँ मैं भी ले लूँ दाख़िला
टिबेटियन लेने पर क्यों कोई एतराज करेगा

ध्यान रहे, वर्ष 1910 में पैदा हुए नागार्जुन की उम्र तब 68 साल की थी लेकिन उनका युवोचित उत्साह इस कविता में देखते ही बनता है। हालाँकि दूसरी ओर दैहिक दुरावस्था यानी आसन्न वृद्धावस्था से व्यथित ऐसे कवि को, जो सदैव नवांकुर की, नवदल, नव किसलय, नवपल्लव और नवयौवन का गान करता रहा है, रह-रहकर गहरी चिंता सताने लगी है। 'मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा' शीर्षक कविता इसी की द्योतक है, जिसमें उन्होंने अपनी इस विवशता को इन शब्दों में रूपायित किया है :

मैं मिलिटरी का बूढ़ा घोड़ा
करेंगे वे मुझे नीलाम
कोई चतुर ताँगावाला
ले जाएगा मुझे
चढ़ा देगा आँखों के किनारे
रंगीन आवरण
और कहता रहेगा : सामने चल बेटा
सामने चल... सामने

जीवनभर देश-देशांतर की अविराम यात्रा करने वाला कवि, जो टेढ़े-मेढ़े सँकरे पथ से अविरल बहने वाली किसी पहाड़ी नदी की तरह बहता अपनी राह बनाता रहा, उससे कहा जाएगा -- 'ऐ बुड्ढे, सामने देखकर चल!' यह छोटी-सी कविता अपने निहितार्थ में बहुत क्रूर है। वृद्धावस्था न केवल व्यक्ति की जिजीविषा बल्कि उसकी मानवीय संवेदना भी छीन लेती है। तब न केवल उसकी आँखों पर घोड़े की आँखों वाला मोटे शीशे का खोलश चढ़ा दिया जाएगा बल्कि उसे बाएँ-दाएँ देखने और चलने की आजादी भी छीन ली जाएगी। लोग उसका उपहास किस प्रकार उड़ाएँगे -- यह इस कविता के ठीक पहले लिखी कविता की चार पंक्तियाँ बता देती हैं :

कुंठित होता हूँ कभी, होता कभी उदास
करते रहते वितर्क वे मैं फेल या पास
काँप रहा थर थर, थर थर दुर्बल हाथों ताश
नहीं सुहाया वृद्ध वयस में विप्लव भरा विलास।(विप्लव विलास)

3 फरवरी, 1979 को लिखित 'क्या ज़रूरत है नाम-धाम कहने की' शीर्षक 55 पंक्तियों की लंबी कविता, निश्चय ही नागार्जुन जी की विशेष मनःस्थिति में लिखी गई कविता है। यह उस दौर में सक्रिय हिप्पीवाद, 'फ्लावर चिल्ड्रेन' और रजनीश के सुखवादी आंदोलन की विडंबना को उजागर करती है। और इसे प्रामाणिक बनाने के चक्कर में वे भी उसी रंग में रंग जाते हैं। कवि ने इसमें भावात्मक आरोह-अवरोह के साथ अपनी पूर्व साधना भूमि की भी चर्चा की है। कविता के आरंभ में स्वयं को श्री श्री प्रेमानंद घोषित किया है और प्रेम हिंडोले में झूलते किसी 'अनाघ्रात कुसुमकली का अमृत आस्वाद' लेते हुए उन्होंने आठवीं सदी में विद्यमान नालंदा महाविहार के आचार्य और वज्रयानी संप्रदाय के आदि सिद्धाचार्य सरहपाद (सरहपा) का उल्लेख किया है। यहाँ वज्रयानी साधना पद्धति में स्वीकृत पंचमकारी (मद्य, माँस, मीन, मुद्रा, मैथुन) साधना से बचते-बचाते भी कवि ने स्पष्ट रूप से बताया है कि उन्होंने उस युवती को तीन बार चूमा था। हालाँकि वे इसे निरामिष की संज्ञा भी देते हैं। इसी भावभूमि से अपने पाठक, पाठकों और बाँधवी को उनका नाम जपने, उनकी जय-जयकार करने के साथ उन्होंने स्वयं को रजनीश का वृद्ध प्रपितामह ही नहीं, वृद्ध प्रमातामह भी बताया है।

यही नहीं, वे अगली पंक्तियों में स्वयं को असली युगावतार और बुजुर्ग हिप्पियों का सद्यःप्राप्त आदिब्रह्म रूप घोषित करते हैं। इसी पिनक में उन्होंने जे.एन.यू. के पास एक टीले पर सारी रात बैठने और वहाँ एक 'प्रज्ञादीप्त अंकुरित यौवना' से मिलने का ज़िक्र किया है, जिसने उन्हें झींगा मछली का भोग (कटलेट) चढ़ाया था। रात्रि के शेष प्रहर में उनके चित्त में प्रथम बार सत्यचतुष्टय -- जिसे आर्ष सत्य चतुष्टय बताया गया, को उपलब्ध करने की निम्न घोषणा के साथ यह कविता समाप्त होती है :

-- सुख सत्य है
-- सुख की आकांक्षा सत्य है
-- सुख प्राप्ति का उपाय सत्य है
-- और सुख प्राप्ति के उपाय की उद्‌भावना सत्य है।
इसीलिए मैं अभी परम ज्ञानी हूँ
इसीलिए मैं अभी परम सुखी हूँ।।

स्पष्ट है, कवि नागार्जुन यहाँ बौद्ध धर्म की परिभाषिक शब्दावली का यथासंभव उपयोग करते हैं और यह जता देना चाहते हैं कि तथाकथित बाबाओं, संतों और स्वनामधन्य धर्माचार्यों से वे किसी भी अर्थ में कम नहीं।

इसी कविता का अगला चरण लगभग पचास दिनों बाद 22 मार्च 1979 को लिखा गया है -- शीर्षक है, 'अक्षय मधुछत्र'। यह कविता भी कवि के बुड़भस को रेखांकित करती है। 'अभी मैं मुक्त हूँ, निर्बंध हूँ अभी' की घोषणा के साथ उन्होंने यह दावा किया कि उन्हें किसी अपरूपा देवी के प्यार का अद्‌भुत, अंतहीन और अक्षय मधुछत्र मिल गया है; इसे उन्होंने ही पहली बार पाया है। कविता के दूसरे चरण में वही शुभ्रवसना देवी कवि के कान में फुसफुसाकर आगाह कर देती है :

यह मधुचक्र
एकाएक हो जाएगा अदृश्य
यदि कदाचित्
किसी कुबेर कन्या को
तुम्हें चूम लेने का
अवसर मिल जाए!

अब यह स्वप्न-रूपक तीसरे चरण में जहाँ एक मिथक में परिणत हो गया है, वहीं कवि महोदय ने दुर्वासा के अभिशाप का विलोम (अर्थात् विपरीत) की कामना की है :

सावधान ओ बूढ़े!
ओ मेरे प्यारे!
तभी तो मैं कामना करता
दुर्वासा मुनि के
विलोम अभिशाप का
तभी तो बच पाएगा
यह बुड्ढा
रसिक बिहारी!

नागार्जुन के युवाकाल और वृद्धकाल का अतिप्रिय शहर (कोलकाता) इन कविताओं में यथाप्रसंग अत्यंत मुखर भाव से प्रकट हुआ है। अगर बांग्ला भाषा की थाती उनके पास नहीं होती तो वे एक आम पर्यटक के नाते मात्र इसका सतही विवरण ही दे पाते। लेकिन उनके पास भाषा के पूर्व संस्कार के साथ उसका वैभव भी था और गौरव भी। उन्होंने बांग्ला से कुछ रचनाओं के अनुवाद भी किए, ऐसी सूचना भी उनकी रचनावली (खंड 3) में दी गई है। प्रस्तुत संग्रह में कलकत्ता की जीवन रेखा वहाँ की ट्रामलाइन और सैरगाह विक्टोरिया मेमोरियल तथा वहाँ के अखबार आनंदबाजार पत्रिका, युगांतर और स्टेट्समैन की चर्चा की गई है। तब, सत्तर और अस्सी के दशक में नक्सलवाद और कांग्रेस बनाम वामपंथ के उग्र टकराव का उन्होंने इसमें संकेत भी किया है। सिद्धार्थ शंकर राय और ज्योति बाबू के नामोल्लेख के साथ ईश्वरचंद्र विद्यासागर की प्रतिमूर्ति के दो-दो बार शिरोच्छेद किए जाने का हवाला भी उनकी 'विद्यासागर' नामक कविता में मिलता है। मूर्ति ढहाकर ये आततायी तस्कर की तरह चंपत हो जाते हैं।

कवि को आशंका है कि ऐसी घटनाएँ भविष्य में न जाने कितनी बार दोहराई जाएँगी। कवि प्रणति के साथ कविता समाप्त होती है :

कतो बार आबार आलादा हबे मुंडु तोमार
लहो हे विद्या सागर / मम शत शत नमस्कार

कवि तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को मौका मिलते ही, अपनी चिरपरिचित व्यंग्य शैली में चित्रित करने से नहीं चूकता। यह दौर नेहरू युग और इंदिरा गाँधी की इंडिकेट सरकार के पतन के बाद, जनता पार्टी के उत्थान और पतन का साक्षी रहा है। इसलिए कई कविताओं में मोरारजी भाई देसाई (नवयौवन प्राप्त), जगजीवन राम, नीलम संजीव रेड्डी (रबर स्टंप राष्ट्रपति नहीं), चरण सिंह (निद्राविहीन) राजनारायण (लोहिया नंदन), चंद्रशेखर (बेचारा) आदि नेताओं की खबर ली गई है। कवि का मानना है कि उनके पाठक राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध हैं इसलिए वे संकेतों में ही अपना संदेश दे देते हैं। एक कविता 'सुगंधित मूर्ख का सारहीन प्रलाप' में किसी नेता के प्रवचन प्रलाप का विवरण भी दिया गया है ताकि इस बात का अंदाज हो सके कि ऐसे नेता आख़िर क्या कुछ कहते (बकते) हैं। इसी क्रम में एकाध हवाई बाबा (सरकारी बाबा) को भी आड़े हाथ ले लिया गया है। कलकत्ता प्रवास के दौरान किसी लंबे-चौड़े दालान में स्थापित नग्न नारी प्रतिमाओं की अलग-अलग विशेषता बताने वाले काव्यरसिक बालकृष्ण व्यास, शलभ राम सिंह (कवि) और शंकर माहेश्वरी की चर्चा कर कवि ने अपनी रसिकता से कविता को जीवंत बना दिया है।

संकलन में कई चतुष्पदियाँ कवि के बालसुलभ खिलंदड़ेपन और तुक्तक वृत्ति की निर्मितियाँ हैं। यहाँ एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :

सचमुच बड़ा बुद्धू था हनुमान रामदास
उस युग का अभियन्ता नल-नील घामदास
ध्वस्त हुआ दसमुख लंकापति कामदास
ऐसा ही कह गए आदिकवि नामदास। (नामदास)

× × × × ×

राजनीति हो गई है संप्रति निर्ल्लज्ज नाटक
मैं भी किया करता हूँ, यत्र तत्र अनेक त्रटक
कहीं होता हूँ अध्यक्ष, कहीं उद्घाटक
खोल चुका हूँ शत-शत महामुक्ति के फाटक। (निर्ल्लज्ज नाटक)

जहाँ तक मूल बांग्ला से हिंदी में अनुवाद की बात है अधिकांश कविताएँ मूल के अनुरूप ही अनूदित हुई हैं। निस्संदेह नागार्जुन ने, अपने पुत्र शोभाकांत द्वारा किए गए इन अनुवादों को देखा होगा और आवश्यक संशोधन भी किए होंगे। मूल और अनूदित अंश समान और समरूप लय और वाक्यों द्वारा विन्यस्त हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी प्रतीत होता है कि कविता मूलतः

हिंदी में लिखी गई हो और उसे बांग्ला में अनूदित किया गया हो। लेकिन अनूदित कविताओं को पढ़ने पर यह नहीं लगता है कि उनमें कुछ ऐसे शब्द और वाक्यांश हैं जो हिंदी में और कुछ बांग्ला में प्रयुक्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, 'भावना प्रवण यायावर' और 'क्षेत्रन्यास' (बांग्ला-हिंदी) का उल्लेख किया जा सकता है यहाँ 'भावना प्रवण' के स्थान पर यहाँ 'भाव प्रवण' अपेक्षित था। इसी प्रकार, बांग्ला में 'क्षेत्रन्यास' में यहाँ गृहस्थी से मुक्ति की बात है, लेकिन हिंदी में यह जटिल प्रयोग है। इसे असफल शब्दानुवाद का उदाहरण माना जाएगा :

मूल बांग्ला पंक्तियाँ : *''दादू बयस हयेछे एखन आपनार/क्षेत्रन्यास निन*
अभ्येस करुन बिराम प्रत्ययेर
धारन करुण चरम परितोषेर भाव''

अनूदित हिंदी पंक्तियाँ : *''दादा, उमर हो गई है आपकी/ क्षेत्र-न्यास ले लो*
अभ्यास करो विराम प्रत्यय का
धारण कर चरम परितोष भाव''

नागार्जुन ने कविताओं में तत्सम शब्दावली का भरपूर उपयोग किया है, जो बांग्ला की भाषा प्रकृति के अनुरूप भी है। लेकिन हिंदी की प्रकृति तद्भव-बहुल शब्दावली की रही है। एक अन्य उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :

मूल पंक्तियाँ (बांग्ला) : *यह मलिन -- महामलिन*
गहन पंक-लिप्त नलिन
लघु प्रकाश गुरु तिमिर
गलित पंगु अंध बधिर
शर शयन हिम शिविर
युग पुरुष द्विज-दिविर (युगपुरुष)

अनूदित पंक्तियाँ (हिंदी): *महामलिन -- महामलिन*
गहन पंक, लिप्त नलिन
लघु प्रकाश गुरु तिमिर
गलित पंगु अंध बहिर
शर-शयन हिम शिविर
युग पुरुष द्विज-दिविर

स्पष्ट है, कहीं-कहीं शब्दानुवाद और नागरी लिप्यंतर द्वारा ही अनुवाद कार्य संपन्न कर दिया गया है। यह ठीक है कि दोनों भाषाओं के जानकार इसे अन्यथा नहीं लेंगे, लेकिन आम हिंदी पाठकों को अवश्य ही कठिनाई होगी। इसके अलावा, अनूदित कविताओं में ऐसे कई शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनकी अर्थ या संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक है। उदाहरण के लिए, 'ब्रह्मराक्षस', 'सारमेयी नंदिनी', 'आद्या छांदसी' जैसे जटिल और परिभाषिक शब्द। उदाहरण के लिए,

मूल पंक्तियाँ (बांग्ला) : *सेइ खर्बाकृति अतिलघु स्वर्ण केशी/ सारमेयी नंदिनी*
एइ कर्णा भूषणेर/भेतर हए बेस भालो भाबेई
पार हये आसबे/आमार एइ स्पेकुलेशन/
शतो प्रतिश तो प्रमाणितो हबेइ-हबे। (कर्णाभूषण)

अनूदित पंक्तियाँ (हिंदी) : *वह खर्बाकृति अतिलघु स्वर्णकेशी/सारमेयी नंदिनी*
इस कर्णाभूषण के अंदर बड़े आराम से/पार हो जाएगी
यह मेरा स्पेकुलेशन/शत प्रतिशत/सच उतरेगा ही

यहाँ हिंदी अनुवाद में 'स्पेकुलेशन' (अनुमान) निश्चय ही चुभता है। दूसरा, लिप्यंतर करते हुए 'बांग्ला' की ओकारांत उच्चारण पद्धति को अनावश्यक तौर पर शब्दों के अंत में जोड़ दिया गया है। बांग्ला में शतो-प्रतिशतो, प्रमाणितो (शत-प्रतिशत-प्रमाणित) नहीं लिखा जाता है -- उच्चारण (ो) के भी कई नियम हैं। अनुवादो (अनुवाद), रणजीतो (रणजीत), भारतो (भारत) आदि प्रयोग गलत हैं। एक कविता का शीर्षक 'पथरीली शिल्प' (पाथरेर शिल्प) में 'पथरीली' तो गलत है ही, इस कविता का शीर्षक 'प्रस्तर शिल्प' होना चाहिए था क्योंकि 'पथरीला' किसी वस्तु की विशेषता या स्वभाव से संबंधित है। इसी तरह, 'संतर्पणे दुई टाकार नोट आयत्त करे' का हिंदी अनुवाद 'नफ़ासत से दो का नोट दबाकर' किया गया है। इसमें 'नफ़ासत' के स्थान पर 'इतमीनान से' शब्द प्रयुक्त किया जाना चाहिए था। संतर्पणे का अर्थ होता है -- बड़े आराम से। इसी कविता (प्रकांड पुलिस मैन...) में प्रयुक्त 'टानना' शब्द का भी उल्लेख किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि हिंदी में यह शब्द व्यवहृत नहीं होता। इसके बदले यहाँ 'बख़्शीश माँगना, उगाहना या खींचना' का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त होता। एक और उदाहरण से यह प्रसंग समाप्त करना उचित होगा। 'थाकबे कि हाथे टाका कोड़ि? प्रज्ञाइ हबे तोर गलाए दोड़ि' (कवि) का हिंदी अनुवाद 'रहेगा क्या हाथ में पैसा-कौड़ी? प्रज्ञा ही बनेगी तुम्हारे गले की फँसरी!' इस कविता में जहाँ अनुवादक ने कड़ि, दड़ि में 'ो' का अतिरिक्त प्रयोग किया गया है, वहीं कौड़ी से तुक मिलाने के चक्कर में फाँस (या रस्सी) के बदले 'फँसरी' शब्द का प्रयोग किया जो कि हिंदी पाठकों के लिए निश्चय ही अजूबा है। इसी तरह, 'हाय बेचारा चंद्रशेखर' शीर्षक (कविता) में 'हाय बेचारी चंद्रशेखर होना चाहिए था', क्योंकि 'बेचारा' शब्द बांग्ला में 'बेचारी' के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

बावजूद, इन छोटी-मोटी कमियों में नागार्जुन के व्यक्तित्व और कवि मनीषा को समझने के लिए 'मैं मिलिटरी का बूढ़ा घोड़ा' उपयुक्त भूमिका के साथ पुनर्प्रकाशित होना चाहिए ताकि हिंदी-मैथिली के ही नहीं, भारतीय भाषाओं के पाठक समृद्ध हो सकें।

❑

Harish Jain

Institutional Efforts in Translation in India

Being associated with the field of translation for almost seven years, I have deduced that translators, though they put in almost similar amount of efforts as like a creative writer yet they remain unacknowledged. Even R.N. Srivastava in the 'Report on National Workshop' in *Making of Indian Literature* endorses are point of view by saying, "Translators have often been undervalued and have seldom been given the acclaim and commendation due to them. While original writers have earned all the glory, translators have often laboured in the obscurity and have remained unpraised, unsung and even unknown." [1]

The paper attempts to focus on the institutional efforts put in the field of translation in colonial and postcolonial India. Although translation is not new to the Indian subcontinent, as the records of *Ramayana*, *Mahabharata*, Jain and Buddhist texts, Kalidasa's *Abhijananam Shakuntalam* translated into *Prakrit* and *Pali* have been found . Moreover, during Mughal period, Indian texts were translated into *Persian* and *Arabic* languages. Nevertheless, if one considers translation to be a relatively new field then one must be reminded that the records of translated version of *Gilgamesh*, *Iliad*, *Aeneid* and *Inferno* have been found on global level as well. To this even Srivastava concurs by stating, "Translations have always been done, though with different orientations, for different purposes and to cater different needs."[2] With the advent of Europeans, a new era of translation began. Herein, the translation was not merely confined to translating, literature, but also extended towards understanding a much 'civilised' language or from 'their' point of view, an 'oriental renaissance' as Raymond Schwab explicated and the construction of knowledge and relationships like Edward Said discoursed in his seminal work, *Orientalism*. This construe of knowledge till today serves as the 'authentic' account of colonies, like Frantz Fanon mentions in *Black Skin, White Mask*.

Susan Bassnett and Harish Trivedi in *Post-Colonial Translations: Theory and Practice* opined that, "Translation doesn't happen in a vacuum, but in a continuum… Translation is not an innocent, transparent activity but is highly charged with the significance at every step. It rarely if ever involves a relationship of equality between texts, authors or systems." [3]

A colonised subject always lived in the state of translation as the act of translation is a political act that implies the erasure or non-existence of the voice

of subject as Spivak explicated through the example of Bhubneshwari Bhaduri in *'Can the Subaltern Speak?'*

However, it was not the East India Company that attempted to 'degrade' itself to the level of Indians, but missionaries convinced the latter regarding their 'backwardness'. So, there was a thriving desire in Bengali communities which was the hub of British to learn the 'civilised' language and western studies. The thirst to learn English was not merely because it was the language of 'white people', but also because of the occupational and professional advantages that accompanied. This thought convinced Bengalis to establish institutions at their own cost and furthering towards educational advancement. Thereby, the 19 th century was marked with establishment of Fort William College in 1800; Calcutta Book Society in 1817; Asiatic Society of Bengal, Calcutta; Vernacular Literature Society in 1851, the Royal Society which sponsored the oriental studies and furthered the task of unravelling the 'mysterious' 'exotic' East through the eyes of Orientalists.

Asiatic Society

Asiatic Society laid the foundation stone in the field of translation in 1784 with its establishment. Though at first glance its contribution might not seem that majestic, but it was pivotal. Firoz High Sarvar in his paper on translators of oriental writing has said, "Most of the works of the Society are research-based and research-oriented, and have not been loudly specular." [4] While arriving in Calcutta, Sir William Jones, the founder of the Society prepared a plan of study for himself that later on turned out to be the basic objective of the Society. This included 'the laws of the Hindus and Mohammedans; the history of the ancient world; proofs and illustrations of scripture; traditions concerning the deluge; modern politics and geography of Hindustan; Arithmetic and Geometry and mixed sciences of Asiatic; Medicine, Chemistry, Surgery and Anatomy of the Indians; natural products of India; poetry, rhetoric and morality of Asia; music of the Eastern nations; the best accounts of Tibet and Kashmir; trade, manufactures, agriculture and commerce of India: Mughal constitution.

However, it was in 1805 that Asiatic Society received a proposal from Serampore Mission to publish classical Sanskrit works with their English translations, and *Ramayana* was the first chosen text. Prior to this, the founding members like Sir Charles Wilkins and Sir William Jones were translating on individual level that were carried further by Colebrooke, (President of the Society from 1806 to 1815) and Wilson (Secretary of the Society from 1811 to 1832). These people were primarily responsible for the rediscovery of India and its past and their major contributions are – *Bhagavad-Gita* into English in 1785 (Wilkins); *Hitopdesha* in 1787 (Wilkins); *Grammar of Sanskrit Language* (Wilkins); Kalidasa's *Sakuntala* into English in 1789 (Jones); Jayadeva's *Gitagovinda* in 1789 (Jones); *Manusamhita* in 1794 (Jones); *Laila Majnu*, a Persian work (Jones); Jagannath Tarkapanchanan's *Vivadabhangarnava*, a seminal work on Hindu law into English in 1798 under the title *Digest of Hindu*

Law on Contracts and Succession (Colebrooke); are also included in these contributions, *Amarkosha* in 1808 (Colebrooke); and Kalidasa's *Meghadoota* into English in 1813 (Wilson). Wilson also translated 18 principal *Puranas* into English.

The magnum opus of the Society still remains to be the *Bibliotheca Indica* that contains a series of hundreds of original and translations of Oriental texts of Bengali, Persian, Sanskrit, Tibetan, Arabic and other Oriental languages. This institution even till today contributes to the national heritage and receives grants from Ministry of Culture, Government of India. The Government of India recognises the Asiatic Society as the Institution of National Importance.

Fort William College

Fort William College emerged as a kernel of research and publishing unit. The College initially translated Christian scriptures – *Bible* and *Gospels* into Persian and Hindustani languages in its own press. However, later on, it attempted to utilise translation as a medium of knowledge acquisition for not just from West to East but vice-versa as well. The institution focussed not just on Bengali, but on Urdu as well, until Sanskritised Hindi took over in nineteenth century. Tariq Rahman in his paper, "The British Learning of Hindustani" on the College says,

"The College is most famous for instituting formal studies of Indian languages, both classical (Sanskrit, Arabic and Persian) and modern (Hindustani, Bengali, Telugu, Marathi, Tamil, Canarese). In this context, John Borthwick Gilchrist's dictionary (1786) and grammar (1796) of Hindustani (Urdu) are well known…. Gilchrist's four years' service in the college was the golden period of publication of modern Urdu prose." [5]

Few of the works are *Bagh-o-Bahar* and *Prem Sagar*. The institution turned out to be the major publisher of Indian languages' pedagogical material, including Punjabi, Oriya, Marathi, Bengali, Telegu, Kannada, Braj and most importantly Urdu. Rahman also talks about "the library… [being] repository of Indian languages … [with] 2990 manuscripts." [6] In his view, "it brought about a renaissance of linguistic learning and gave an impetus to the creation of modern prose and literature in India, which remain its crowning achievements." [7]

Nevertheless, there were few other institutions that contributed to the field of translation, including Calcutta School Book Society (estb. in 1817), Calcutta Vernacular Literature Society (estb. in 1851) and Serampore Mission Press, that was the first printing press establishment of colonial India. In order to facilitate the requirement of Bengali and Hindustani language elementary books by Fort William College, Calcutta and School Book Society came into being. The Society was expected to prepare, publish and manage the cheap or complimentary supply of works that would be useful to schools and seminaries of learning. It also provided the books of school instructions in English and Arabic languages. The pivotal point in the journey of this 'truly valuable institution' as observed by Calcutta

Christian Observer, was when it obtained the permission to reprint books published by London Society for Diffusion of Useful Knowledge in 1830. Calcutta Vernacular Literature Society which produced the translations and magazines of popular juvenile English literature like Robinson Crusoe into vernacular languages, was assimilated into School Book Society in 1862. The School Book Society, thus enriched its stocks by taking over the Vernacular Literature Society.

Serampore Mission Press

Serampore Mission Press of Serampore was yet another facilitator of Fort William College. The press published dictionaries, legerds history, moral tales and grammar books for School Book Society and Fort William College. Religious Christian tracts, Bengali translations of *Ramayana* and *Mahabharata* and other Indian literary works, and vernacular textbooks are some of the major contributions by Serampore Mission Press in the field of translation. Basically, the Press facilitated the purpose of missionaries by letting people read translations of Bible in approximately 50 vernacular languages and other South Asian languages. The missionaries also decided to publish a Bengali newspaper, *Samachar Durpun* and a bilingual (English and Bengali) monthly magazine, *Dig-Durshan.*

Few of the major work published in the Press were: Bengali *New Testament* (1801); Historical books in Oriya, Sanskrit, Hindi, Kashmiri, Assamese and Maratha; *Butrisha Singhasun* (1802); *The Works of Confucius* (Original Chinese text with translation in 1809); Comparative Vocabulary of Burman, Malayau and Thai languages (1810); *Gurudukhina* (1818); Assamese *New Testament* (1819); Sankhaya Purvuchana Bhashya (2nd ed., in Sanskrit in 1821); Khasi *New Testament* (1824); *Grammar of the Bengali Language*, compiled by Carey (3 volumes) (1825);*Dictionary and Grammar of the Bhotanta* (1826); Manipuri New Testament (1827); and Bengali translations of *Mooghubodha* and *Hitopdesha*, *Raja Vuli* (1838).

The institutional efforts in the field of translation by then had shifted to personal efforts, as the R. Raghunath Rao's *The Art of Translation* came out in early 20th century, along with translated works of Rabindranath Tagore's *Geetanjali* and *Ghare Baire*. Moreover, there are lots of individual translation works during this period in and from Indian languages.

Publications Division

Nevertheless, in 1941,Publications Division(now under the aegis of Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India) came into existence. Herein the purpose of translation shifted from learning "cultured" language to preservation of "national heritage and disseminating the same through the production and sale of quality reading materials at affordable prices", [8] as the official website of Publications Division declares as its mandate.Since then, the institution which began at small scale has published almost 6,400 titles in English, Hindi and different regional languages which comprises of translated books in most of the regional languages. The Division imparts the reader, with the knowledge about

India related to its nature and culture, flora and fauna, history, art and economy along with "biographies of the Builders of Modern India, cultural leaders of India, life and works of other prominent Indian personalities from different walks of life and India's history and freedom struggle", as per the annual report 2016-17 of Ministry of Information and Broadcasting, Government of India. [9]

The annual report also mentions about the publication of "several books on Gandhian thoughts including the *Collected Works of Mahatma Gandhi*(CWMG) in 100 volumes, in English and *Sampoorna Gandhi Vangmaya* in Hindi which is considered to be the most comprehensive and authentic collection of Gandhiji's writings."[10]

Sahitya Akademi

In this series of institutions, the proposal to establish Sahitya Akademi was in process prior to Independence itself that was under the British government's consideration. Then it was envisaged as 'National Academy of Letters' but in December 1952 it came to be called as Sahitya Akademi and in 1954, it was inaugurated by the Government of India. As the official website states that this national organisation that it will "work actively for the development of Indian letters and … set high literary standards, foster and co-ordinate literary activities in all the Indian languages and … promote through them all the cultural unity of the country." [11] In inauguration ceremony held in Parliament' Central Hall, Maulana Abul Kalam Azad and Dr. S. Radhakrishnan elaborated the purpose of Sahitya Akademi in their speech by saying that, "The phrase, Sahitya Akademi, combines two words 'Sahitya' is Sanskrit, and 'Academy' is Greek. This name suggests our universal outlook and aspiration. Sahitya is a literary composition; Academy is an assembly of men who are interested in the subject. So Sahitya Akademi will be an assembly of all those who are interested in creative and critical literature. It is the purpose of this Akademi to recognise men of achievement in letters, to encourage men of promise in letters, to educate public taste and to improve standards of literature and literary criticism." [12]

This is the only institution as of now that undertakes literary activities in 24 Indian languages, including English and had brought out more than 6,000 titles. The Akademi organises over 50 seminars at regional, national and international level every year, along with over 300 workshops and literary gatherings. The renowned institution gives away about 50 awards to the literary works written in the recognised languages and literary translations from and into Indian languages, and to eminent authors, translators and has also established fellowship in the names of Premchand and Dr. Anand Coomaraswamy.

The Akademi works massively in the field of translation. It attempts to bring together various literary and cultural traditions and unite the diversified India in its own way. For this purpose, Sahitya Akademi has started an annual prestigious prize for translation from 1989 to be given to outstanding translations in 24 languages recognised by it. Till date, Akademi has awarded almost 350

prestigious translators of 24 languages for their outstanding Translation. Such awards motivate the people engaged in the field of translation. It has also launched Centres of Translation in Delhi, Bengaluru, Kolkata and Ahmedabad and an Archive of Indian Literature in Delhi. In order to promote Tribal and Oral literature, a project office has been set up in North-Eastern Hill University Campus, Shillong.

National Book Trust

Yet another institution set up by Government of India to develop reading habits among the masses is National Book Trust. However, the autonomous organisation works prominently in the field of translation and publishing books in almost every major language i.e. English, Hindi, Guajarati, Kashmiri, Manipuri, Asamiya, Sindhi, Nepali, Malayalam, Himachali, Bhojpuri, Punjabi, Marathi, Kannada, Maithili, Tamil, Telugu, Urdu, Khasi, Garo, Bhutiya, Lepcha, Mising, Limbu, Miso, Newari, Bodo and Kokborok. As per the Annual Report 2015-16, it has published 1,078 titles including 106 original, 81 translations, 881 reprints and 10 revised editions. It can be deduced that the organisation publishes over 1,000 titles annually, including almost 100 translations. It is one of the activities of the Trust to provide financial assistance to foreign publishers to translate and publish Indian books into their respective languages, as a part of its Financial Assistance Programme. [13] As per the NBT newsletter of March 2016, "The Government of India and the Government of People's Republic of China have put forward an ambitious translation programme that includes translation of 25 each of classical and contemporary literary works from Chinese into Hindi and Indian literary works into Chinese. The External Publicity and Public Diplomacy Division of Ministry of External Affairs, Government of India and the National Book Trust, India are collaborating to take forward this programme."[14] The NBT also organises seminars and workshops on translations in collaboration with national and international institutes and organisations from time to time.

Though all the afore-mentioned postcolonial institutions were and are working efficiently in the field of translation, but none of them was able to coordinate or amalgamate each and every facet of the ever-growing field of translation.

Central Institute of Indian Languages (CIIL) and National Translation Mission

Central Institute of Indian Languages (CIIL) was established to coordinate the development of Indian languages and harmonise them through scientific studies and mutual enriching of languages. This institution, by creating corpus and content contributes in the development of Indian languages. Various centres and projects are running under CIIL. However, National Translation Mission that was established on the recommendation of the National Knowledge Commission and now operative under CIIL, proposed "to fulfil the long-felt need that would satisfy different segments: teachers, learners,

language technologists, business groups, newspaper establishments, and other media groups, creative writers, readers, those engaged in comparative studies and translation theoreticians", as stated in the proposal of NTM.[15] While others are working towards the development in the field of translation on a small scale, NTM attempts to establish translation as an industry, a full-fledged career by providing accessible knowledge texts to learners pursuing higher education in various Indian languages in this multilingual nation. Thus it would empower the translators and the field, on the whole by expanding the horizons of the field with the development of new terminologies and discourse styles.

NTM currently manages a database where over 5,000 translators have enrolled under the National Register for Translators and has organised many workshops, seminars and orientation programmes for translators in different parts of the country. The institution also plans to launch a countrywide training programme. This relatively new institution also publishes a double-blind peer-reviewed, indexed and referred UGC Approved journal, *Translation Today,* which has been recognised by "numerous universities and institutions of national and international significance" as "leading journal in the field of Translation Studies", as the official website of NTM states. [16] The institution also works hand in hand with national and international publishers of translated texts from and into Indian languages. The NTM also makes in-house translated pedagogical material of 69 chief subjects of higher education that are accredited under University Grant Commission (UGC) and All India Council for Technical Education (AICTE), available in Indian languages. Alongside, NTM promotes machine-aided translation and is working on the development of softwares and tools for translation.

Conclusion

Translation has helped in knitting India together as a nation throughout its history. It brought, and still brings languages closer to one another and introduces them with diverse modes of imagination and perception and various regional cultures thus linking lands and communities together. Ideas and concepts like 'Indian literature', 'Indian culture', 'Indian philosophy' and 'Indian knowledge systems' would have been impossible in the absence of translations with their natural integrationist mission.

Through this paper we have seen the trajectory of the institutional efforts put in the field of translation since colonial era, within this there was a phase when it moved from institutional translations to individual translations efforts and then back to major focus on institutional translation. Even this phase was of great importance as it allowed the Indians to gain confidence in the richness of their own literature and educated them about the western thought process. Barring this dip (individual translation) the institutional translation progressed from the clutches of orient and occident to the opulence of India. Furthermore, it is due to the institutionalised translation efforts that tribal and oral languages are also gaining momentum and so are the north-eastern languages. Be it

publication division, Sahitya Akademi or CIIL, MYSORE each of them contribute in their own manner in the national integrationist mission – the nation where the dialect changes after every four miles with the efforts of National Translation Mission (NTM), India is already progressing in the field of knowledge text translation with the help of machine aided translation systems. It will be overwhelming to see the future course of institutional efforts in the field of translation in India.

❑

References

1-2. Srivastava, R. N. 1991. *Making of Indian Literature*, Ed. By K Ayyappa Paniker: 4-5. New Delhi: Sahitya Akademi.

3. Bassnett, Susan and Harish Trivedi. 1998. *Post-Colonial Translations: Theory and Practice.* 2. London: Routledge.

4. Sarvar, Firoz High. 2012. "Europeans in Bengal Territory: the Pioneer and Dexterous Translators of Oriental Writings, 1765-1857". International Journal of Scientific and Research Publications, Vol. 2, Issue 9: 1-5. Online: http://www.ijsrp.org/research-paper-0912/ijsrp-p0986.pdf

5-7. Rahman, Tariq. 2008. "The British Learning of Hindustani". Pakistan Vision Vol. 8 No. 2: 26-28. Online: http://results.pu.edu.pk/images/journal/studies/PDF-FILES/Tariq-2%20new.pdf 26, 27 & 27

8-10. "Annual Report 2016-17". 2017. New Delhi: Ministry of Information and Broadcasting, Government of India.

11. 2018. 'About us', Sahitya Akademi: National Academy of Letters: 9.1.2018. Online: http://sahitya-akademi.gov.in/sahitya-akademi/aboutus/about.jsp

12. Rao, D.S. 2004. *Five Decades of The National Academy of Letters, India: A Short History of Sahitya Akademi :* 4. New Delhi: Sahitya Akademi.

13. "Annual Report, 2015-16". 2016. New Delhi: NBT.

14. "NBT Newsletter". 2016. Vol. 34 No. 3: 1. New Delhi: NBT.

15-16. "Proposal for National Translation Mission by National Knowledge Commission". 2006. 1-5. New Delhi: National Knowledge Commission. Online: http://knowledgecommissionarchive.nic.in/downloadsrecommendations/ProposalNationalTranslationMission.pdf

डॉ. आनंद कुमार शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की अनुवाद दृष्टि

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के लेखन कार्य का एक बड़ा हिस्सा अनुवाद कार्य है, लेकिन उन्होंने किसी पुस्तक या किसी पाठ के अंतर्गत अपनी अनुवाद संबंधी धारणाओं का उल्लेख नहीं किया है। इतनी विपुल मात्रा में अनुवाद कार्य करने वाले अनुवादक के पास अनुवाद दृष्टि अनुपस्थित रही हो, ऐसा मानना संभव नहीं है। शुक्ल जी के अनुवाद कार्यों का अध्ययन करने पर उनमें एक स्पष्ट दृष्टिकोण एवं तारतम्यता का भान होता है। उनकी अनूदित पुस्तकों में लिखित उनके वक्तव्यों में भी उनकी अनुवाद संबंधी धारणाएँ रेखांकित की जा सकती हैं।

आचार्य शुक्ल का कोई भी अनुवाद कार्य अनायास या अकारण नहीं है। उनके प्रत्येक अनुवाद का एक निश्चित उद्देश्य है। अपने उद्देश्य का शुक्ल जी ने अपनी अनूदित कृतियों की भूमिकाओं में उल्लेख किया है। लेकिन आचार्य शुक्ल की साहित्य-साधना बहुआयामी थी, लेकिन उनके अनुवाद कार्यों में निहित उद्देश्यों पर मुख्य रूप से दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। पहला, ऐतिहासिक विकासयात्रा में भारतवर्ष के प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना करते हुए देशवासियों के मन में आत्मगौरव एवं राष्ट्रगौरव का संचार तथा पददलित हीन भावना का निष्कासन; दूसरा, भारत के पिछड़े हुए समाज को दुनिया के नवीनतम ज्ञान-विज्ञान की विविध धाराओं से जोड़ना। इसीलिए शुक्ल जी ने जहाँ एक ओर *लाइट ऑफ एशिया* और *शशांक* का अनुवाद किया तो दूसरी ओर उन्होंने *रिडिल ऑफ यूनिवर्स, माइनर हिंट्स*, लिटरेचर आदि ज्ञान के विविध पक्षों से संबंधित रचनाओं को भी अनूदित किया।

आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक चिंताओं और चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में हिंदी-भाषी जनता को सदैव अद्यतन रखा। प्राचीन भारत के स्वरूप निर्धारण के प्रति उनके अंर्ततम में जो तीव्र ललक दिखलाई पड़ती है, उसका सीधा संबंध उनकी राजनीतिक जागरूकता से है। भारत के प्राचीन इतिहास को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने न केवल मौलिक लेख ही लिखे, बल्कि अंग्रेजी में प्रस्तुत कई लेखों को अनूदित भी किया।[1] एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित उनकी पहली अनूदित कृति *मेगास्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन* भारत के प्राचीन इतिहास से संबंधित महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

सामान्य तौर पर, यह बहुत आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि साहित्यिक संदर्भों से इतने गहरे अर्थों में जुड़ा एक महान अध्येता/रचनाकार इतिहास-दृष्टि के उन्नयन के प्रति योजनाबद्ध तरीके

से सतत प्रयत्नशील रहा। किंतु, आश्चर्य की गाँठ 1929 ई. में जाकर खुल गई, जब आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास-बोध को, *हिंदी-शब्द-सागर* की भूमिका के रूप में इसके चरमोत्कर्ष पर उद्‌घाटित किया। आज साहित्य के विद्यार्थी उनके साहित्येतिहासकार रूप को ही सर्वाधिक जानते हैं।

शुक्ल जी के अनुवाद कार्यों में जिस पहली विशिष्टता को परखा जा सकता है, वह है -- मूल कृति के भावों की रक्षा के साथ उसका लक्ष्य भाषा (हिंदी) की विविधता एवं सीमाओं के साथ संबंध स्थापन। प्रत्येक भाषा अपने विकासक्रम में उसका प्रयोग करने वाले समाज की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को आत्मसात करती चलती है। यह भाषा का वह पक्ष है, जिसके कारण साहित्यिक अनुवाद और खासकर काव्यानुवाद को एक दुःसाध्य कार्य समझा जाता है। शुक्लजी ने अपने अनुवाद कार्यों में सांस्कृतिक सहचरण को लक्ष्य भाषा (हिंदी) के पाठकों के विशिष्ट संदर्भ में देखा। शुक्ल जी ने बराबर यह ध्यान रखा है कि अनूदित कृति में मूल कृति के भावों की संरक्षा तो हो ही, उसका स्वरूप एवं संप्रेषण ऐसा हो कि पाठक अनूदित कृति के साथ सहज रूप से आत्मीय संबंध विकसित कर सके।

जैसाकि टी.एस. एलियट ने कहा था -- ''कविता का पाठक कविता को केवल समझना ही नहीं चाहता, बल्कि उसका आस्वाद भी करना चाहता है।''[2] अनुवाद कार्य के दौरान शुक्लजी ने आस्वादन प्रक्रिया को यथासंभव अक्षत रूप में पुनर्जीवन देने का प्रयास किया है। *बुद्धचरित* की काव्यमयता और *शशांक* का सांस्कृतिक संरचनात्मक तनाव इस बात के जीवंत उदाहरण हैं। आस्वादन प्रक्रिया की पुनर्सर्जना के दौरान भी शुक्ल जी ने लक्ष्य भाषा के पाठकों, उनके इतिहास, संस्कृति और सबसे बढ़कर उनकी जरूरतों का विशेष तौर पर ध्यान रखा है। इसके आलोक में उन्होंने अपनी अनूदित कृतियों में व्याख्या, संशोधन एवं संपादन किया है।

आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित कृतियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वे शब्दशः अनुवाद की बजाए अपने समय-समाज के संदर्भों और जरूरतों को ध्यान में रखते हुए भावानुवाद को वरीयता देते थे। (वैसे आज लगभग सभी अनुवाद विशेषज्ञ शब्दानुवाद और भावानुवाद के बीच की कठिनाइयों के दौरान भावानुवाद को ही वरीयता देते हैं।) इसके आलोक में शुक्लजी ने न केवल अपनी अनूदित कृतियों में स्वतंत्र विचारों का समायोजन किया है, बल्कि आवश्यकता के अनुसार कई घटनाओं एवं विचारों को जोड़ा या परिवर्तित भी किया है। *विश्व प्रपंच* भाग-एक में आचार्य शुक्ल ने हैकल के विचारों से टकराते और उसकी आलोचना करते हुए अपने स्वतंत्र विचार रखे हैं।

लेकिन, परिवर्तन का सबसे रोचक उदाहरण है -- अनूदित उपन्यास *शशांक*। इस उपन्यास के उत्तरार्ध को उन्होंने अपने ऐतिहासिक ज्ञान द्वारा व्यापक रूप से विकसित, परिमार्जित, परिवर्धित एवं परिवर्तित किया है। इस कार्य को औचित्य प्रदान करने के लिए शुक्लजी ने *शशांक* की भूमिका में ऐतिहासिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया कि हर्ष के समकालीन शासक शशांक का जो रूप अपने मूल उपन्यास में राखाल बाबू ने प्रस्तुत किया है, वह गलत है। अर्थात् शुक्लजी की यह स्पष्ट मान्यता थी कि मूल रचनाकार द्वारा की गई गलतियों को दोहराने के लिए अनुवादक बाध्य नहीं है और वह वास्तविक तथ्यों के अनुरूप

अनूदित कृति में परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र है।

तथ्यों के साथ-साथ आचार्य शुक्ल ने *शशांक* में भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमानों के आधार पर भावुक संबंधों एवं उनकी निष्पत्तियों के संदर्भ में भी परिवर्तन किए हैं। *शशांक* की भूमिका में इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा -- ''मैंने इस उपन्यास के अंतिम भाग में कुछ परिवर्तन किया है। मूल लेखक ने हर्षवर्धन की चढ़ाई में शशांक की मृत्यु दिखाकर इस उपन्यास को दुःखांत बनाया है। पर जैसा कि सैन्यभीति के शिलालेख से स्पष्ट हैं शशांक मारे नहीं गए, वे हर्ष की चढ़ाई के बहुत दिनों पीछे तक राज्य करते रहे। अतः मैंने शशांक को गुप्तवंश के गौरव-रक्षक के रूप में दक्षिण में पहुँचा कर उनके निःस्वार्थ रूप का दिग्दर्शन कराया है। मूल पुस्तक में करुण रस की पुष्टि के लिए यशोधवल की कन्या लतिका का शशांक पर प्रेम दिखाकर शशांक के जीवन के साथ ही उस बालू के मैदान में उसके जीवन का भी अंत कर दिया गया है। कथा का प्रवाह फेरने के लिये मुझे इस उपन्यास में दो और व्यक्ति लाने पड़े हैं -- सैन्यभीति और उसकी बहिन मालती। लतिका का प्रेम सैन्यभीति पर दिखाकर मैंने उसके प्रेम को सफल किया है। शशांक के निःस्वार्थ जीवन के अनुरूप मैंने मालती का अद्‌भुत और अलौकिक प्रेम प्रदर्शित किया है। कलिंग और दक्षिण कौशल में बौद्ध तांत्रिकों के अत्याचार का अनुमान मैंने उस समय की स्थिति के अनुसार किया है।''[3]

उपन्यासों के अनुवाद के इतिहास में इतना बड़ा और रोचक परिवर्तन शायद ही किसी अनुवादक ने किया हो। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत शशांक और मूल उपन्यास के शशांक के व्यक्तित्व में मौलिक अंतर है। स्पष्ट है कि सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों एवं साक्ष्यों के आलोक में आचार्य शुक्ल अनुवादक को स्वतंत्र रचनाकार के समकक्ष रखते थे।

बुद्धचरित भी अनुवादक द्वारा ली गई ऐसी ही स्वतंत्रताओं से अछूता नहीं है। *बुद्धचरित, लाइट ऑफ एशिया* का शब्दशः या आँख मूँदकर कर किया गया अनुवाद नहीं है। शुक्लजी की सतर्क दृष्टि ने प्राप्त सामग्री में चुनाव का कार्य लगातार किया है। जो कुछ सही और अच्छा लगा उसे उन्होंने अनूदित किया, जहाँ कुछ खटका उसमें उन्होंने संशोधन किया और जहाँ कुछ कथाक्रम में अनावश्यक-सा प्रतीत हुआ उसे छोड़ देने में भी उन्होंने कोई कोताही नहीं दिखाई। *बुद्धचरित* के वक्तव्य में उन्होंने अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए लिखा -- ''दृश्य वर्णन जहाँ अयुक्त या अपर्याप्त प्रतीत हुए वहाँ बहुत कुछ फेरफार करना या बढ़ाना भी पड़ा है।''[4]

शुक्ल जी ने इस प्रकार की स्वतंत्रता सबसे अधिक बुद्ध के जीवन से संबंधित वर्णनों में ली है। उन्होंने कई पात्रों के नाम तो बदले ही हैं, राजमहल और प्रकृति वर्णन आदि कई दृश्यों को भी बदलते हुए अपनी मौलिक उद्‌भावना प्रदर्शित की है।[5] इस प्रकार के वर्णनों में से कई जो उन्हें अनुपयुक्त लगे, उनके द्वारा छोड़ दिए गए हैं।[6] एडविन अर्नाल्ड ने मूल कृति में बुद्ध के जीवन के अंतिम क्षणों का वर्णन नहीं किया है। शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में सिद्धार्थ के जीवन के अंतिम क्षणों को भी स्थान दिया है।[7] साथ ही, शुक्ल जी ने बुद्ध के जीवन से संबंधित कई अन्य दृश्यों को भी अपनी ओर से जोड़ा है।[8]

हालाँकि *लाइट ऑफ एशिया* भारतीय जीवन एवं दर्शन पर आधारित काव्य कृति है, किंतु इसके रचनाकार विदेशी भाषा एवं संस्कृति से संबंधित हैं। एडविन अर्नाल्ड ने इस कृति को भारतीय दृष्टि से लिखने का यथासंभव प्रयास किया, किंतु *लाइट ऑफ एशिया* उनके अपने सांस्कृतिक तत्वों से अछूती नहीं है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इस कृति के अनुवाद के दौरान शुक्लजी ने लगातार ध्यान रखा है कि अनूदित कृति अपने भाषाई समाज से सीधा संबंध बना सके और किसी भी रूप में कोई सांस्कृतिक दूरी परिलक्षित न हो पाए। शुक्लजी ने अपने वक्तव्य में लिखा -- ''यद्यपि ढंग इसका ऐसा रखा गया है कि एक स्वतंत्र हिंदी काव्य के रूप में इसका ग्रहण हो, पर साथ ही, मूल पुस्तक के भावों को स्पष्ट करने का भी पूर्ण प्रयत्न किया गया है।''[9]

कृतियों के अनुवाद के दौरान आचार्य शुक्ल ने स्वाभाविक एवं सहज शैलीगत विशेषताओं का अनुकरण करते हुए भावानुवाद को वरीयता दी। जहाँ-जहाँ भी स्रोत भाषा की निजी विशिष्टताओं के परिप्रेक्ष्य में निष्प्रभावी समतुल्यों से उनका सामना हुआ, उन्होंने नवीन उद्‌भावनाओं को प्रभाव साम्य के आधार पर पुनर्सृजित किया। अपने अनुवाद कार्य में उनकी तैयारी रचनात्मक और मौलिक लेखन के समान ही थी।

वस्तुतः आचार्य शुक्ल के अनुवादक व्यक्तित्व में दो समाकलित व्यक्तित्वों का गुणसूत्र रूप में मिलन है। एक व्यक्तित्व मूल कृति के नितांत अनुगत रहता है तो दूसरा उसके समांतर रहते हुए उस पर लक्ष्य भाषा की सर्जनात्मक विशिष्टताओं का आरोपण करता है, साथ ही निर्विकार बौद्धिक दृष्टा की भूमिका भी जीता है।

❑

संदर्भ

1. *चिंतामणि-4* (सं.) श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी, ओमप्रकाश सिंह; आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी; प्रथम संस्करण, 2002 में आचार्य शुक्ल के इतिहास संबंधी कई मौलिक एवं अनूदित लेख संकलित किए गए हैं।
2. *पाश्चात्य साहित्य-चिंतन* -- निर्मला जैन, कुसुम बाँठिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 183
3. *शशांक* -- (अनु.) आचार्य रामचंद्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; नवीन संस्करण, संवत् 2042 वि., भूमिका, पृ. 10

4-9. *बुद्धचरित* -- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण सं. 2042 वि., वक्तव्य, पृ. 1; 64, 80, 97, 100, 118, 130 आदि; 1, 38, 43, 53, 66, 72, 114, 128, 139 आदि; 152, 156; 20, 75, 100, 117 आदि; 1

प्योदर दोस्तोवेस्की
अनु. : संतोष खन्ना

क्रिसमस वृक्ष और विवाहोत्सव

कुछ दिन पहले मैं एक विवाहोत्सव में गया था। लेकिन मैं यहाँ उसके बारे में नहीं, यहाँ एक क्रिसमस वृक्ष के बारे में बता रहा हूँ। उत्सव बहुत भव्य था। वह मुझे बहुत पसंद आया लेकिन उससे अधिक पसंद आई एक घटना, जिसके बारे में मैं आपको बताने जा रहा हूँ। पता नहीं उस विवाहोत्सव को देखकर मुझे उस क्रिसमस वृक्ष का स्मरण हो आया है। पाँच वर्ष पहले की बात है। नव वर्ष के उपलक्ष्य में मुझे बच्चों की एक पार्टी में व्यापारी वर्ग के एक व्यक्ति के द्वारा आमंत्रित किया गया था। उसका समाज में बहुत रसूक था; उसके बड़े-बड़े लोगों से संबंध थे।

ऐसा लग रहा था कि बच्चों की वह पार्टी तो मात्र एक बहाना था, बच्चों के माता-पिता एक-दूसरे से मिलकर, जाने-अनजाने, गपशप करने के लिए वहाँ इकट्ठे हुए थे। मैं वहाँ एक अजनबी-सा था क्योंकि मैं तो वहाँ मेजबान के सिवाय किसी को नहीं जानता था और वहाँ मैं किसी काम से भी नहीं गया था। इसलिए मैं वहाँ सबसे अलग अपना समय बिता रहा था। मेरी ही तरह वहाँ एक और व्यक्ति भी था जिसकी उस पार्टी में कोई रुचि नहीं थी। सबसे पहले मेरा ध्यान उसी की ओर गया। उसे देखकर यह नहीं लगा कि वह किसी संभ्रांत या कुलीन परिवार से था। लंबे कद का दुबला-पतला वह व्यक्ति चुस्त-दुरुस्त पोशाक पहने हुए था। वह एक गंभीर प्रकृति का व्यक्ति लग रहा था। ऐसा लग रहा था कि उसे उस पार्टी में जरा भी रुचि नहीं है। जैसे ही चलकर वह एक कोने में जाकर खड़ा हुआ उसके चेहरे पर ओढ़ी हुई मुस्कान गायब हो गई और उसकी गहरी काली भौंहें तन-सी गई। वह भी वहाँ मेजबान के सिवाय किसी को नहीं जानता था। यद्यपि, उसे पार्टी नीरस और उबाऊ लग रही थी, लेकिन फिर भी वह यह दिखाने की बड़ी कोशिश कर रहा था कि उसे वहाँ बड़ा मज़ा आ रहा है। बाद में मुझे पता चला कि वह कहीं बाहर से आया है। वह यहाँ इस राजधानी में किसी जरूरी काम-धंधे के सिलसिले में आया है और साथ ही हमारे मेजबान के लिए एक सिफारिशी पत्र भी लाया है। इसलिए हमारे मेजबान ने उसे केवल शिष्टतावश बच्चों की पार्टी में आमंत्रित किया था। सभी वहाँ ताश खेल रहे थे, लेकिन किसी ने उसे न तो ताश खेलने

के लिए आमंत्रित किया न ही उसे सिगरेट आदि के लिए पूछा। उससे कोई बातचीत भी नहीं कर रहा था। शायद वहाँ उपस्थित सभी लोग दूर से ही उड़ती चिड़िया के परों से उसे पहचान गए थे। मैंने देखा, वह वहाँ खड़ा-खड़ा इतना उकता रहा था कि उसने अपनी मूँछों को सहलाना शुरू कर दिया। वास्तव में उसकी मूँछे बहुत सुंदर लग रही थीं, जिन्हें देखकर ऐसा लगा मानो उसकी मूँछे संसार में पहले आई थीं और उसका जन्म बाद में इसलिए हुआ कि वह मूँछों को सहला सके।

वहाँ एक और भी मेहमान था, जो मुझे काफी रोचक लगा। वह एक अलग प्रकार का गणमान्य व्यक्ति लग हो रहा था। उसका नाम जूलियन मास्कोविच था। उसे देखकर पहली नजर में ही देखकर कहा जा सकता था कि वह एक सम्मानित मेहमान था और मेजबान के सान्निध्य में चल रहा था। उसकी मेहमानदारी करते हुए मेजबान और उनकी पत्नी उसकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। साथ ही उसके साथ चलते-चलते उसका अन्य मेहमानों से परिचय तो कराते जा रहे थे लेकिन किसी और व्यक्ति को उसके पास फटकने भी नहीं दे रहे थे। मैंने देखा कि जब जूलियन मास्कोविच ने यह कहा कि इतनी खुशनुमा शाम उसने और कहीं नहीं मनाई तो मेजबानों की आँखों में खुशी के आँसू चमक उठे थे। कुछ देर बच्चों के साथ, जिसमें चार बच्चे काफी हृष्ट-पुष्ट थे, मन बहलाव करने के बाद मैं एक बिलकुल खाली पड़े छोटे-से कमरे में चला गया। मैंने देखा वह आधा कमरा सामान से भरा हुआ था।

वहाँ बच्चे बहुत सुंदर थे और उनका व्यवहार अपने बड़ों से बिलकुल विपरीत था। उनकी माँ और गवर्नेसों द्वारा अनुशासित किए जाने की कोशिशों के बावजूद हुड़दंग मचाते हुए वे क्रिसमस वृक्ष पर सजे खाने की चीज़ों को उतारकर खा गए थे और यह जाने बिना आधे खिलौनों को भी तहस-नहस कर चुके थे कि वह किस-किसके लिए थे।

उनमें से एक काली आँखों, घुँघराले बालों वाला छोटा सुंदर-सा लड़का अपनी लकड़ी की बंदूक से लगातार मुझपर निशाना लगा रहा था। किंतु मुझे अधिक आकर्षित किया उसकी 11 वर्षीय छोटी बहन ने, जो बहुत ही प्यारी-सी थी। वह एकदम शांत और गंभीर, अपनी बड़ी-बड़ी स्वप्निली आँखों से कुछ सोचती हुई-सी लग रही थी। एकाएक बच्चों ने उसे नाराज कर दिया। वह उन्हें वहीं छोड़ उस कमरे में आ गई जहाँ उस समय मैं बैठा था। वह वहाँ हाथ में एक गुड़िया लिए एक कोने में आकर बैठ गई।

''इनके पिताश्री बहुत ही धनाढ्य व्यक्ति हैं।'' मेहमान बातें करते हुए आश्चर्य मिश्रित स्वर में एक-दूसरे को यह सूचना दे रहे हैं। ''उन्होंने अपनी इस बेटी के दहेज के लिए तीन हजार रुबल अलग से जमा कर रखे हैं।''

जैसे ही मैंने इस प्रकार की चर्चा करते लोगों से अपनी आँखें घुमाईं, मेरी आँखें जूलियन मास्कोविच से जा टकराई। वह अपने हाथों को अपनी पीठ पर बाँधें और सिर को उनकी ओर घुमाकर उनकी बातें अतिरिक्त ध्यान देकर सुन रहा था। मेजबान ने जिस चतुराई और करीने

से उपहारों को सजा रखा था, मैं मन ही मन उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सका। बहुमूल्य दहेज पाने वाली उस प्यारी-सी लड़की को एक सुंदर-सी गुड़िया उपहार में मिल गई थी और शेष उपहारों को माँ-बाप की हैसियत के अनुसार क्रमबद्ध रूप में रखा गया था। उनमें से एक चित्रविहीन प्रकृति संबंधी कहानी पुस्तिका जो अंतिम उपहार था, 10 वर्षीय दुबले-पतले लाल बालों वाले उस बच्चे के लिए था जो गर्वनेंस का बेटा था। गर्वनेंस एक गरीब विधवा थी और उसका यह बेटा एक साधारण-सी मुचड़ी-तुचड़ी जैकेट पहने हुए था। उसने प्रकृति संबंधी कहानी-पुस्तिका हाथ में ली और बच्चों के खिलौनों के इर्द-गिर्द घूमकर उन्हें देखने लगा। वह खेलने के लिए कोई भी खिलौना ले लेना चाहता था लेकिन इतना साहस वह नहीं कर पाया। उसे देखकर यह पता चल रहा था कि वह जानता था कि उसकी हैसियत क्या है?

मुझे बच्चों को ध्यान से देखना अच्छा लगता है। यह देखना बड़ा रोचक होता है कि किस तरह बच्चे अपना स्वाभिमान का प्रदर्शन करने के लिए संघर्ष करते हैं। मैं देख रहा था कि उस लाल बालों वाल लड़के को दूसरे बच्चों के लिए रखे खिलौने बहुत अच्छे लग रहे थे। रंगमंच वाला खिलौना उसके आकर्षण का केंद्र बना हुआ था। वह उस रंगमंच में भाग लेने के लिए इतना उत्सुक दिख रहा था कि उसे लेने के लिए दूसरे बच्चों की चिचोरी करने के लिए भी तैयार लग रहा था। वह मुस्करा कर उनके साथ खेलने लगा। उसके हाथ में एक ही सेब था। उसने वह सेब एक मोटे-से शरारती बच्चे को दे दिया, जिसकी जेबें पहले ही तरह-तरह की मीठी चीजों से भरी थीं और उसने एक दूसरे बच्चे को अपनी पीठ पर बैठाकर घुमाया ताकि बच्चे उसे रंगमंच के खिलौने के साथ खेलने दें।

लेकिन, कुछ ही क्षणों के बाद एक युवा व्यक्ति उसके ऊपर आ गिरा और उसने उसकी मुक्कों से पिटाई कर दी। वह बेचारा रोने का साहस भी नहीं जुटा सका। तभी उसकी माँ गवर्नेंस वहाँ आई और उसने उस बच्चे को कहा कि तुम दूसरे बच्चों को खेलने दो और वहाँ से चले जाओ। वह रुआँसा-सा होकर उस कमरे में आ गया जहाँ वह छोटी-सी प्यारी-सी लड़की गुड़िया हाथ में लिए बैठी हुई थी। उसने उसे अपने पास बैठने दिया और दोनों मिलकर उस महँगी गुड़िया को कपड़ों से सजाने लगे।

लगभग आधा घंटा बीत गया। इस बीच मैं उस लाल बाल वाले लड़के और उस प्यारी-सी लड़की की बातें सुनता-सुनता लगभग उंघने लगा था तभी अचानक वहाँ मास्कोविच ने प्रवेश किया। वह बच्चों के शोर से बचने के लिए ड्राइंग रूम से आँख बचाकर उस कमरे में आ गया था। कुछ देर पहले वह उस प्यारी-सी लड़की के पिताश्री से घुल-मिलकर खूब बातें कर रहा था, हालाँकि उनका परिचय कुछ समय पहले ही हुआ था।

मास्कोविच यहाँ भी थोड़ी देर खड़ा-खड़ा कुछ सोचता हुआ स्वयं ही बुदबुदा रहा था, मानों वह अपनी अंगुलियों पर कुछ गिनती कर रहा होः ''तीन सौ..तीन सौ.. ग्यारह...बारह... तेरह...सोलह... पाँच वर्षों मे कितने होंगे... यदि 4 प्रतिशत हो... 5 गुणा 12 होंगे साठ। मान

लीजिए यह पाँच वर्ष में राशि चार सौ हो जाएगी... उसे आठ... या दस, सौ या हजार भी मिल सकते हैं। इतना तो मिलेगा ही... उसके अलावा जेब खर्च भी है।''

उसने अपनी नाक साफ की और कमरे से बाहर जाने के लिए वह जैसे ही मुड़ा उसकी नजर उस लड़की पर जाकर अटक गई। उसके पैर एकाएक वहीं जम गए। मैं पौधों के पीछे था। वह मुझे नहीं देख पाया।

वह एकाएक उत्तेजना की स्थिति में दिखाई दिया। हो सकता है वह जो गणना कर रहा था उससे उसका मिजाज बिगड़ गया था। उसने अपने हाथों को मला और कमरे में इधर-उधर चहल-कदमी करने लगा और अधिक उत्तेजना की स्थिति में आता गया। अंततः उसने अपनी भावनाओं को नियंत्रित किया और एक जगह पर आकर खड़ा हो गया। उसने भविष्य में अपनी होने वाली दुल्हन पर गहरी नजर डाली और उसकी ओर जाना चाहा किंतु उससे पहले उसने अपनी नजरें चारों ओर घुमाई। फिर वह मानो अपराध-बोध की अपनी भावना से उभरते हुए लड़के को पार करता हुआ झुका और उसने उस लड़की का माथा चूम लिया।

उसका वहाँ आना इतना अप्रत्याशित था कि वह लड़की चौंक उठी और डर के मारे उसकी चीख निकल गई।

''तुम यहाँ क्या कर रहे हो प्यारी बच्ची'' वह उसके बाद उस लड़के के पास जाकर बुदबुदाया। उसने बच्चे के गालों को खींचते हुए कहा।

''हम खेल रहे हैं।'' उस लड़की ने उत्तर दिया।

''अरे! क्या? इस लड़के के साथ खेल रही हो?'' मास्कोविच ने गवर्नेस के लड़के की तरफ देखा।

''तुम्हें ड्राइंग रूम में जाना चाहिए।'' उसने लड़के को कहा।

बच्चा चुप रहा और उस व्यक्ति को उसने आश्चर्य से देखा।

जूलियन मास्कोविच ने चारों ओर सावधानीपूर्वक देखा और लड़की की तरफ झुक कर पूछा,

''तुम्हारे पास यह क्या है? अच्छा गुड़िया है?''

''जी हाँ'' उसके स्वर में थोड़ी घबराहट थी और उसने उसकी बात पर नाक-भौंह चढ़ा ली।

''गुड़िया? क्या तुम जानती हो गुड़िया कैसे बनती है? गुड़िया को बनाने में किन-किन चीजों का इस्तेमाल होता है?''

''नहीं'' उसने धीरे-से उत्तर दिया और अपना सिर झुका लिया।

''बच्चे, गुड़िया फटे-पुराने कपड़ों के टुकडों से बनाई जाती है। अरे लड़के, तुम ड्राइंग रूम में जाओ न... जाकर बच्चों के साथ खेलो'' उसने बच्चे की ओर कड़ी नजर से देखा।

दोनों बच्चों ने परस्पर एक-दूसरे को कसकर पकड़ लिया। वह अलग नहीं होना चाहते थे।

''तुम्हें पता है उन्होंने तुम्हें गुड़िया क्यों दी है?'' जूलियन ने धीमी आवाज में उस लड़की से पूछा।

''नहीं''।

''क्योंकि तुम बहुत अच्छी लड़की हो, तुम हमेशा अच्छी लड़की रही हो।''

इतना कहते हुए जूलियन मास्कोविच ने किसी असुरक्षा की भावना से घिरते हुए धीरे-से उससे पूछा, ''अगर मैं आपके घर आऊँ तो क्या तुम मुझे प्यार करोगी?''

उसने उस प्यारी-सी लड़की का चुंबन लेना चाहा, लेकिन लाल बालों वाले लड़के ने देखा कि वह लड़की रोने को हो रही है। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और सहानुभूति में जोर से सुबकने लगा। यह देख जूलियन को बहुत गुस्सा आ गया।

''अरे लड़के, यहाँ से चले जाओ... दूसरे कमरे में चले जाओ... जाकर अपने दोस्तों के साथ खेलो।''

''मैं नहीं चाहती कि वह यहाँ से जाए। आप चले जाओ।'' लड़की ने चिल्लाकर कहा।

''उसे आप छोड़ दें... छोड़ दें उसे।'' वह अब लगभग रोने लगी थी।

तभी किसी के उधर आने की पदचाप सुनाई दी। जूलियन मास्कोविच ने अपने शरीर को सीधा किया। लाल बालों वाला लड़का और अधिक डर गया था। उसने लड़की का हाथ छोड़ दिया और दीवार के साथ-साथ चलता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

उसकी तरफ किसी का ध्यान न जाए, यह सोचकर वह भी कमरे से बाहर निकल डाइनिंग रूम में चला गया।

पूरे वातावरण में विस्मययुक्त भाव तैर रहे थे। उस लड़की की माँ प्रफुल्लित हो जूलियन मास्कोविच से अत्यंत शिष्ट भाव से पूछ रही थी कि क्या वह उनसे मिलने के लिए आएगा।

मैंने मास्कोविच को पूरे उत्साह से उसका निमंत्रण स्वीकार करते हुए सुना। बाद में सभी मेहमान उस सुसज्जित कमरे के भिन्न-भिन्न भागों में फैल गए और सभी आपस में मेजबान, उनकी पत्नी और उनकी सुंदर बेटी तथा साथ ही जूलियन मास्कोविच की प्रशंसा करने लगे।

''क्या उसका विवाह हो चुका है?''

मैंने अपने पास खड़े एक परिचित से जुलियन मास्कोविच के बारे में सभी को सुनाते हुए पूछा।

जूलियन ने मेरी ओर जहर बुझी नजरों से देखा।

''नहीं'' मेरे परिचित ने ऐसा पूछने के पीछे मेरे आशय या भावना से चौंकते हुए कहा।

उसका चेहरा समुद्री झींगे की तरह क्रोध से लाल हो रहा था। शीशे में वह अपना बिंब देख घबरा गया। शायद वह अपनी अधीरता और जोश से खफा लग रहा है। उसकी हैसियत और गरिमा को देखते हुए दहेज राशि के लिए लालची हो जाना उसे बिलकुल शोभा नहीं देता था। फिर यह दहेज आज नहीं, उसे पाँच साल बाद मिलने वाला था। मैं चुपके से उसके पीछे-पीछे

डाइनिंग रूम में चला आया। वहाँ का दृश्य देख मैं अवाक् रह गया।

जूलियन बुरी तरह खीझा हुआ दिखाई दे रहा था। वह जहर-भरी नजरों से लड़के को देख उसे धमकाने लगा। लड़का डर के मारे पीछे हटता जा रहा था। लड़के को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे।

''यहाँ से दफा हो जाओ। यहाँ क्या कर रहे हो? क्या फल चुरा रहे हो? ओ बेहूदा-बेवकूफ लड़के, अपने जैसे लोगों के पास चले जाओ।''

बच्चा बुरी तरह डर गया था। वह लगभग रेंगता हुआ मेज के नीचे चला गया। जूलियन किसी जालिम की तरह अपने रेशमी रुमाल का कोड़े की तरह इस्तेमाल करने लगा।

मैं यहाँ यह बता दूँ कि जूलियन फूले गालों और सख्त घुटनों वाला एक स्वस्थ एवं स्थूलकाय आदमी था। बच्चे के प्रति उसकी घृणा अथवा ईर्ष्या इतनी अधिक थी कि वह पागलों-सा चिल्लाने लगा था।

उसे इस हालत में देखकर मुझे जोर की हँसी आई। वह मेरी तरफ मुड़ा। वह एकदम परेशान लग रहा था और कुछ क्षण के लिए तो वह अपनी हैसियत ही भूल गया था। उसी समय, सामने से हमारे मेजबान आते दिखाई दिए। बच्चा रेंगता हुआ मेज के नीचे से बाहर आया और उसने अपने घुटनों और कोहनियों को झाड़ा-पोंछा। जूलियन ने जल्दी से अपना रेशमी रूमाल ऊपर उठाया और अपनी नाक पोंछने लगा। हमारे मेजबान ने हम तीनों को शक की निगाहों से देखा। जूलियन ने मानों पूरी दुनिया देख रखी थी, एकाएक सहज होते हुए उसने अपने मेजबान को बड़ी चतुराई से स्थिति से अवगत कराते हुए कहा -- ''मैं आपको इस लड़के के बारे में बता रहा था। आप इस बच्चे की मदद करें।'' मेजबान ने लाल बालों वाले लड़के की ओर इशारा किया।

''अच्छा'' जूलियन अभी तक पूरी तरह सहज नहीं हो पाया था।

''यह लड़का हमारी गवर्नेस का बेटा है।'' हमारे मेजबान ने अनुनयपूर्ण स्वर में कहा। ''हमारी गवर्नेस बेचारी बहुत गरीब है, वह हमारे कर्मचारी की विधवा है। इसलिए, अगर आपके लिए संभव हो तो कृपया..।''

''असंभव! असंभव!'' जूलियन ने लगभग चिल्लाते हुए कहा। ''आप मुझे क्षमा करेंगे। फिलिप अलेक्टाविच। वास्तव में मेरे लिए यह संभव नहीं है। मैंने पूछा है। अभी कोई स्थान खाली नहीं है। प्रतीक्षा सूची में पहले ही नौ-दस लोगों का नाम है, यह लोग बहुत ही जरूरतमंद हैं। मुझे खेद है मैं कोई मदद नहीं कर पाऊँगा।''

''ओह, यह बहुत ही अच्छा बच्चा है।''

''नहीं, बहुत ही शैतान-धूर्त बच्चा है।''

जूलियन ने बड़े ही कटु स्वर में कहा -- ''तुम अभी यहीं हो। जाओ, दूसरे बच्चों के साथ खेलो।'' जूलियन ने उस बच्चे को डाँटते हुए कहा।

अपने पर नियंत्रण रखने में असफल रहने पर उसने मुझे गहरी नजरों से देखा। मैं भी अपने पर नियंत्रण नहीं रख सका और मैं उस पर खूब हँसा। वह पीछे मुड़ा और उसने मेजबान से मुझे सुनाते हुए मेरे बारे में पूछा। वे एक-दूसरे से फुसफुसाए और मेरी बिना परवाह किए वहाँ से चले गए।

मैं हँसी से लोट-पोट हो रहा था। इसके बाद मैं भी ड्राइंग रूम में चला आया। वहाँ भी उस बड़े आदमी को देखा, जिसे बच्चों के माता-पिताओं ने घेर रखा था और वह उत्साह में भर कर एक महिला से बात कर रहा था जिसका परिचय उसे अभी-अभी कराया गया था। उस महिला ने उस धनाढ्य छोटी लड़की का हाथ पकड़ रखा था। जूलियन उस लड़की के तारीफों के पुल बाँध रहा था। वह उसकी सुंदरता, शालीनता और प्रतिभा का गुणगान कर रहा था और उसके ऊँचे खानदान से संबंधित होने के कारण अत्यंत आह्लाहित हो रहा था। वह लड़की की माँ की हर तरह से चापलूसी करने की कोशिश कर रहा था। उसकी मीठी बातें सुनकर माँ की आँखों मे खुशी के आँसू झलक उठे थे और उसके पिताश्री के चेहरे पर संतुष्टि का भाव था और वह मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

हँसी-खुशी के इस वातावरण में सभी खुश हो रहे थे। बच्चों ने भी खेलना और शोर मचाना बंद कर दिया था ताकि उनके वार्तालाप में किसी प्रकार का विघ्न न पड़े। तत्पश्चात्, सभी लोग विदा लेकर जाने लगे।

कुछ वर्षों बाद मैं चर्च के पास से गुजर रहा था। वहाँ पर कुछ लोग किसी विवाह में सम्मिलित होने के लिए एकत्रित हुए थे। यह एक नीरस-सा दिन था। शायद वर्षा की फुहार पड़नी आरंभ हो गई थी। मैं भीड़ में से होता हुआ चर्च के अंदर चला गया। एक हृष्ट-पुष्ट गोल चेहरे और मोटे पेट वाला व्यक्ति वहाँ दुल्हा बना हुआ था। वह प्रबंध करने के लिए इधर-उधर दौड़ रहा था। पता चला कि दुल्हन आ रही है। मैं भीड़ को धकेलता हुआ आगे बढ़ा, मैंने देखा कि वहाँ एक अनन्य सुंदर नव-यौवना दुल्हन थी। किंतु उसका चेहरा पीला और उदास था। वह उखड़ी-उखड़ी-सी लग रही थी। मुझे लगा रोने से उसकी आँखें सूजी हुई थी। उस निष्कपट चेहरे के हर भाव और भंगिमा से उसके सौंदर्य में उसकी उदासी छिप नहीं रही थी। उसके चेहरे के अनेक भाव-दया की याचना-सी करते लग रहे थे। लोग कह रहे थे कि दुल्हन केवल 16 वर्ष की है। अचानक मैंने जूलियन मास्कोविच को पहचान लिया। मैं उसे तभी उस पार्टी में ही मिला था। उसके बाद मेरी कभी उससे मुलाकात नहीं हुई थी। तब मैंने दुल्हन को दुबारा देखा। ''हे भगवान। यह वही लड़की है।'' मैं यथासंभव भीड़ को चीरता चर्च से बाहर आ गया। भीड़ में लोग दुल्हन के दहेज के बारे में बतिया रहे थे -- उसका दहेज पाँच हजार रुबल और जेब खर्च अलग। ''उसकी गणना सही थी'' सोचते हुए मैं गली में आ गया।

❑

कमलेश बख्शी

तुम

कहाँ से शुरू करूँ समझ नहीं आता, कितनी ही बार सोचा तुम्हें पत्र लिखूँ। ढेर-सी बातें इकट्ठी हो गई हैं -- ढेर बातें क्या जिंदगी का एक बहुत बड़ा टुकड़ा है सामने रखने के लिए -- मुझे कभी-कभी तुमसे भी शिकायत हो जाती है, फिर लगता है -- तुमसे ही नहीं मुझे अपने आपसे, अपनी जिंदगी से -- हर बीतें क्षण से, हर आने वाले क्षण से शिकायत है। उस जिंदगी को कोरे कागज पर उतार दूँ -- जो तुम तक पहुँचे तो पढ़कर यह तो नहीं कहोगे -- शिकायतनामा ही है -- प्रेम-पत्र नहीं -- पढ़कर कचरे के डिब्बे में तो नहीं डाल दोगे।

लिखने से पहले लगा तुम बहुत निकट हो। बहुत आत्मीय हो। तुम्हारे चेहरे की एक-एक रेखा से परिचित हूँ -- तुम कौन हो... कहाँ हो -- पता-ठिकाना क्या है? क्या करते हो? कुछ भी तो नहीं मालूम? सपनों में सोते-दिन में जागते एक भले से चेहरे से मुलाकात होती है, जिसके ओठों पर मंद मुस्कराहट रहती है -- आँखें मुक्त हँसती हैं। देखती रहती हूँ मैं बिना पलक झपके -- क्या आँखें हँस सकती हैं -- अपने मन से पूछा -- सच आँखें हँस रही थीं तुम्हारी -- उन हँसती आँखों वाले का नाम दे दिया मैंने -- 'तुम'।

धरती पर तुम कहीं नहीं दिखे -- बिना नाम-पते वालों से कैसा अपनत्व जुड़ गया -- हर सुबह-हर घट से निकली लहर-सड़क पर अन्य लहरों से जुड़ती जाती है और चढ़ती बाढ़ का रूप ले लेती है -- मानवों की बाढ़। शाम को फिर सड़कों पर बाढ़ उतरती है ऑफिस से लौटते-हुजूम की -- थकी-माँदी सुस्त लहरों-सी -- अपने-अपने द्वारों में समा जाती है। कभी-कभी सैलाब के सामने खड़ी चेहरे देखने लगती हूँ और तलाशने लगती हूँ तुम्हें -- बस के क्यू में -- बस में फिर घबराहट चेहरे देखने बंद कर देती हूँ -- कहीं हँसती आँखों वाला दिख गया -- कहीं हँसती आँखों वाला अंतर का निर्मल न हुआ, तो मन में शंका उठती। अगर ऐसा हुआ तो बुलबुले-सी मैं भक् से टूट जाऊँगी, फिर मैं बिना किसी को देखे चुपचाप चलती रहती हूँ।

यह दुस्साहस नहीं किसी अनजान को पत्र लिखना है न इसीलिए मन-मस्तिष्क से पूछा -- किसी से जवाब नहीं मिला। दोनों की फुसफुसाहट सुनी -- जिंदगी की उलझनों में डूबता व्यक्ति

कभी-कभी जीने का सहारा ढूँढ़ लेता है। एक तिनका... हाँ सच कहा है किसी ने -- तिनका भी डूबते का सहारा बन जाता है। हँसती आँखों वाले 'तुम' तिनका-सा होते हुए भी डूबने से बचाते जा रहे हो।

मेरी जिंदगी न तो फूलों का हार है न हीरे-मोती, मणिका, न काँटों का। ऐसा लगता है किसी नटखट बालक ने सभी को तोड़-बिखरा दिया है। मोती-काँटे-फूल एक-दूसरे में गड्डमड्ड हैं -- ऐसी ही बिखरी पड़ी है मेरी जिंदगी।

एक बार गिरती दीवार की फिर ईंट पर ईंट रखना, गारा लगाना, कच्ची दीवार का फिर ढह जाना -- मेरी मजबूरी है इसी तरह की जिंदगी जीने की। यही करती आई हूँ मैं। नौकरी कर रही हूँ, यह भी बड़ा सहारा है जिंदगी जीने के लिए।

एक बार लंच की छुट्टी में सह-अध्यापिकाओं की छुटपुट घरबार की बातें चल रही थीं -- मैंने जाने कैसे कह दिया -- एक तस्वीर के बार-बार रंग बदलते थक गई हूँ -- तस्वीर बनती ही नहीं...

दूसरी ने कह दिया -- तस्वीर फाड़ दो। नए सिरे से, नए रंग-ब्रश ले फिर बनाओ -- बिगड़ी तस्वीर बनती नहीं। सभी पाले से झुकी फसल-सी मुरझा गई।

सभी जानती हैं -- मेरी जिंदगी खुली पुस्तक-सी रही है उनके सामने। कुछ सीनियर हैं, कुछ जूनियर हैं।

सीनियर के सामने उदास, खामोश लड़की की तरह थी। जूनियर ने मुझे बुरी तरह काई-सा फिसलन वाला और कीचड़ा-भरा गृहस्थ जीवन जीते देखा है।

बार-बार काई से फिसल कीचड़ से लथपथ -- मेरा अंदरूनी चोटें खा जाता है। जगह-जगह नील पड़ जाते हैं, जख्म होते हैं -- किसी को नहीं दिखते -- मेरी आँखों को भी नहीं। मेरी अंदरूनी आँखें देख सकती हैं -- पीड़ा महसूस करती हूँ, फिर रास्ते तलाशने लगती थी। तुम भी मानोगे न रास्ते हैं -- पर कदम नहीं उठे उन रास्तों पर। हारकर गहरी उदासी ने एक रास्ता ढूँढ़ा -- आँखें मूँदकर स्वप्न देखना। मन का कुछ चाहना गलत है क्या -- यातनाओं से भरे जीवन के बीच। एक आकृति रेखांकित हो गई थी -- आकृति में प्राण फूँक देती हूँ -- फिर उसके साथ हँसती बात करती हूँ -- सिंधु किनारे जा बैठती हूँ -- साथ बच्चे भी होते हैं।

ये कुछ क्षण जिंदगी का सुखद टुकड़ा -- इसे भोगने का लोभ छोड़ नहीं पाती और शिकायत भी है तुमसे -- क्यों आ जाते हो -- पल की छाँव के बाद जेठ की दुपहरी-सी तपती जिंदगी... जीना कितना कठिन होता है मालूम -- धूप बहुत कष्टप्रद लगती है वैसे तो चलते रहो, धरती-आकाश की तपिश के बीच -- पसीना झरता रहेगा -- तन झुलसता रहेगा -- चलता रहता है इनसान को छाँव का पल-भर का सुख कमजोर बना देता है। समझे न... बहुत पीछे जाऊँ तो... बचपन बीता था, विमाता से टकराते। मैं जूझती थी, अत्याचार सहती नहीं थी --

चाहे दो-दो दिन तक भूखा रखा जाता था। समझ आते ही एक दिन आँसू-भरी पिता की आँखों ने -- सब सहने के लिए मजबूर कर दिया -- फिर हर अत्याचार -- हर अन्याय चुपचाप सहने लगी थी।

निम्न मध्यम वर्ग की मातृहीन लड़की -- विमाता के दो पुत्र, एक पुत्री -- भला मेरी किसी को आवश्यकता थी क्या?

एक दिन विमाता के दूर के अमीर रिश्तेदारों के घर मेरा रिश्ता तय हो गया। सगाई पर आई अध्यापिकाओं की आँखें खुली-की-खुली रह गईं। गहने-कपड़े देख सबने मेरे भाग्य को सराहा -- सुंदर, सुगढ़ लड़की के लिए क्यों न अच्छा घर मिलता -- सभी पैसे के लालची थोड़े ही होते हैं -- फिर ऐसी विमाता पूजने लायक है जिसने सौतेली लड़की के लिए इतना किया।

शादी के कुछ दिन पहले मालूम हुआ -- मेरी प्रश्न-भरी आँखें पिता की करुण आँखों के सामने झुक गईं। मैं द्वितीया बनकर जा रही थी उस पुरुष के पास जिसके पास उसकी प्रथम पत्नी भी साथ रहती थी -- और रहेगी। सुंदर, अमीर घर की, क्लब सोसायटी के उठने-बैठने लायक -- स्वयं पति की शादी करवा रही थी। उसके बच्चा नहीं हो सकता था। उन्हें बच्चा गोद लेने से यह ठीक लगा था। कम-से-कम बच्चा उसी पुरुष का होगा।

मेरी शादी के बाद एक माह प्रथमा मायके रहीं, फिर आ गईं। वह पुरुष अपनी प्रथम पत्नी के ही बेडरूम में सोने लगा -- हमेशा सोता रहा -- आज भी वहीं सोता है। कभी-कभी मेरे पास आता था, अब तो नहीं आता। अमीर की पत्नी नौकरी नहीं करेगी -- बड़ी मेमसाहब का हुक्म था। यह बात शादी से पहले ही कहलवा दी थी। वर्ष बीतते मैंने एक पुत्री को जन्म दे दिया था। बड़े मधुर स्वर में दीदी ने कहा था -- हाँ, मैं उन्हें दीदी ही कहती हूँ। नौकर मेरे आने के बाद बड़ी मेमसाहब।

''शीलू -- अभी कमजोर हो, आराम करो, बच्ची को मैं सँभाल लूँगी।''

वे अपने बेडरूम के साथ बनाए बच्चों के बेडरूम में बच्ची की खाट उठवा ले गईं। आया की सहायता से पालने लगीं -- तीन माह तक केवल दूध पिलाने भेजतीं -- फिर बंद करवा दिया -- यह मेरी है, मैं ही पालूँगी -- अच्छा शीलू!

मैंने सिर हिला दिया।

मैं कुछ नहीं कर सकती थी, इतनी मोम हो गई थी। साहस ही नहीं जुटा पाती थी। कह दूँ -- प्रथम संतान मेरे पास ही रहने दो -- दूसरी ले लेना।

मैं पढ़ती रहती, सोई रहती, समय काटे न कटता।

यह भी सोचा करती -- वह पुरुष अपनी प्रथम पत्नी के प्रति कितना वफादार है -- कितना प्रेम है दोनों का। नहीं तो युवती पत्नी के आकर्षण में खो जाना अस्वाभाविक न होता। पत्नी का त्याग भी कम नहीं। पति का दूसरा विवाह करवाया, कितना बड़ा खतरा मोल लिया

था। इससे उल्टा भी हो जाता -- छोटी रानी पटरानी बन जाती तब वह कोने में पड़े रहती -- मुझे दोनों के प्रति श्रद्धा हो गई -- क्योंकि उन्हें मुझसे केवल बच्चा चाहिए था। फिर मुझे लगा एक बड़ा षड्यंत्र-सा चल रहा है -- अजीब से दुर्व्यवहार की मैं शिकार होने लगी। उस स्त्री और उस पुरुष से भय लगने लगा था। जैसे सब कछ छिन गया -- उदास होने लगा था। मायका क्या और ससुराल क्या -- उधर खाई-उधर कुआँ... मायके जाने का पूछा तो कह दिया -- हाँ, जा आओ -- बच्ची की सँभाल वहाँ बराबर न होगी, इसे नहीं ले जाओगी -- मैं लौट आई थी मायके -- मुख्य अध्यापिका को मिली थी नौकरी के लिए -- उन्होंने तीन महीने की छुट्टी पर गई शिक्षिका के खाली स्थान पर रख लिया। कुछ ही दिनों बाद जब मैं वापस न गई, अमीर घर की बात सड़क पर आ गई -- गरीब लड़की लाने का यही तो नतीजा होना था। बीस हजार के गहने ले मायके जा बैठी -- यह खबर मुझे वापस बुलाने का तरीका था -- या अपनी इज्जत बचाने के लिए मुझे बदनाम करने का -- राम जाने। पिता की करुण आँखों का मैंने विद्रोह किया था -- मैं नहीं जाऊँगी पापा -- मैं अलग रह लूँगी -- मेरे यहाँ रहने से यदि तुम्हारी लड़कियों की शादी में अड़चन आएगी तो।

तुम्हें क्या बताऊँ -- क्या न गुजरी उन दिनों। मैं केवल कुछ कपड़े, कुछ गहनों के अतिरिक्त कुछ नहीं लाई थी। विमाता ने बढ़ा-चढ़कर पड़ोस में बदनाम किया -- पत्थर है -- बच्ची भी छोड़ आई -- यहाँ मेरी लड़कियों के रास्ते में रोड़ा बन गई है -- चुड़ैल ससुराल जा ही नहीं रही -- हमें भी बरबाद करेगी। इस मूरख को कैसे समझाऊँ, घर बच्चों वाली का होता है।

तीन माह बीतते...नौकर एक दिन सुबह-सुबह पहुँचा -- छोटी मेमसाहब... बेबी नहीं रही -- डिप्थीरिया हो गया था। मेरे अंतर की माँ बिलख उठी, चीख उठी।

''साहब कार में बैठे हैं।'' नौकर फिर बुदबुदाया।

पापा ने मुझे सँभाला -- विमाता ने मेरी अटैची भरी और साथ हो लिए।

बच्ची को तीन माह बाद देखा था -- पहले से स्वस्थ थी -- बड़ी-सी लग रही थी -- अभी ही उठ जाएगी। मुस्कराएगी। उसकी मौत का जिम्मेदार न जाने क्यों अपने आपको मान लिया मैंने।

मैं उदास थी, बहुत उदास। वहीं रहने लगी थी। इसके अतिरिक्त और कोई राह नहीं थी। मुझ पर दोनों का स्नेह था। भले नौकरी करती रहो, दिल लगा रहेगा। फिर कठोरता आ गई थी दीदी में -- ''कोई अपना घर छोड़ इस तरह जाता है -- आज के बाद कभी यह विचार भी मन में नहीं आना चाहिए। इज्जतदार आदमी हैं हम -- बड़े घरों की तहजीब सीखनी होगी।''

मैंने सिर झुका लिया था। अपने को गुनहगार मान लिया था।

आया ने मौका देख ताना दिया था -- कैसी माँ हो तुम -- मैंने तो न देखी न सुनी -- बड़ी मेमसाहब दिन-रात पास बैठी रहीं। दुबारा यहाँ रहने पर मालूम हुआ। पहली पत्नी

पिता की इकलौती संतान है। ससुर ने कारखाना ही जँवाई को दे दिया। मालिक वह पुरुष ही है, पत्नी भी पार्टनर है -- दोनों बुजुर्ग की सलाह से काम करते हैं।

तब मेरी धारणा उस पुरुष के प्रति बदलने लगी थी। मीटिंग, क्लब, सोसायटी फंक्शन में शादी-गमी में दोनों साथ जाते थे -- सही मायने में पति-पत्नी हैं। साल के अंत तक एक पुत्र को जन्म दे दिया था मैंने -- जितनी खुशियाँ पुत्री की मनाई गईं, पुत्र की नहीं -- दीदी कहने लगीं, नजर लग गई थी -- मेरी बच्ची को -- मुन्ना साल का होगा तभी नामकरण-जन्मदिन पार्टी सब करेंगे।

मैं उस बंध्या में पुलकित माँ के दर्शन कर विभोर हो जाती। कभी घृणा करती -- मेरे और मेरी संतान के बीच दीवार-सी लगती। उस पुरुष में संतान की ललक नहीं दिखी, न कभी बच्चा उठाते या पुचकारते देखा। जो दिनचर्या पहले थी वही बाद में भी थी। संतुष्ट होंगे पत्नी को देख। मुन्ना साल-भर का हुआ -- खूब धूमधाम से जन्मदिन मनाया गया -- कुछ समय बाद -- एक पुत्री फिर दो वर्ष बाद एक पुत्र आ गया था। बस यही इतिश्री थी। तीनों स्वस्थ, सुंदर बच्चों के बीच दीदी खोई रहतीं। खेलते देखती रहतीं, पलक झपकाए बिना। तब मुझे जानते हो देवकी याद आ जाती है -- यशोदा का चित्र आँखों में आ जाता है -- कृष्ण को गोद में लिए फूली नहीं समाती यशोदा माता -- और देवकी बाल-सुलभ भोली हरकतें भी न देख पाई। यहाँ मैंने कम-से-कम बच्चों को बड़ा होते देखा है -- दीदी ने अपनी अतृप्त आकांक्षा की पूर्ति इन बच्चों से कर ली -- ठीक वैसे ही बच्चे पाले जैसे वे स्वयं जन्म देकर पालतीं। पहले बच्चे के समय मुझे लगा था बच्चा मुझसे छिन गया -- मैं परिस्थिति से समझौता कर न पाई थी। अब लगता है, बच्चे समझते हैं, मैं उनकी माँ हूँ -- फिर भी पूर्ण रूप से दीदी से जुड़े हैं -- वही उनकी मम्मी हैं। मैं छोटी मम्मी हूँ। होटलों में जाना, पिकनिक, पिक्चर जाना, हिल स्टेशन जाना वे ही पाँचों जाते -- ऐसा नहीं मुझसे न कहते हों -- बहुत कहते हैं। दीदी, मैं नहीं जाती -- मुझे उन सबके बीच पराएपन का बोध होता है। कभी अकेले बच्चे ले जाने चाहे तो बच्चे मम्मी के बिना कदम नहीं उठाते। बच्चे साथ ले जाने की आकांक्षा भी धीरे-धीरे मर गई।

मैं पाँच-सात-आठ वर्षीय तीन बच्चों को जन्म देने वाली निःसंतान माँ-सी हूँ। वैसे ऐसा भी नहीं है कि मेरा कोई अपमान करता है -- पूर्ण सम्मान मिलता है। नौकर या आया लापरवाही नहीं दिखाते। घर में हर तरह के हक हैं मुझे -- मेरी सह-अध्यापिका आती हैं तो क्या बनेगा मैं कहती हूँ। बच्चों से परिचय कराती हूँ। नौकरी छोड़ी नहीं -- छोड़ने के लिए किसी ने कहा भी नहीं -- अच्छा खाना-कपड़ा, नौकर-चाकर, कार, बच्चे, पति सभी तो हैं मेरे पास। कार का उपयोग मैं नहीं करती -- बस से जाती हूँ या टैक्सी से। पहले सह-शिक्षिकाओं के साथ कभी-कभी पिक्चर देख लेती थी -- अब नहीं। तुम बताओ क्या एक पत्नी की इच्छा नहीं होती -- घड़ी-भर बच्चों व पति के साथ बैठे -- कहीं बाहर जाए -- कभी घर-गृहस्थी

की बात हो -- कभी खटपट हो... मेरा जीवन शांत बहती मैदान की नदी-सा है जिससे मैं ऊब जाती हूँ -- मैं क्या हूँ, कैसे जी रही हूँ, तुम समझे न!

बच्चों को कुछ भी चाहिए तो मम्मी से माँगते हैं -- हठ करते हैं -- मम्मी, कॉमिक मँगवाकर रखना, नहीं तो आज कुट्टी। मम्मी, रीता का बर्थ-डे है, गिफ्ट मँगवा लेना -- मम्मी, ड्राइवर के साथ आज तुम लेने आना। नहीं जाओगी तो कु...ट्...टी... स्कूल जाते समय ... और लौटते समय उन्हें मम्मी सामने चाहिए।

मम्मी, आज स्कूल डे है -- स्पोर्ट्स है -- मम्मी, आ जाना -- लाड़-प्यार, रूठना-डाँटना -- सब चलता रहता -- मैं पढ़ाई -- एक शिक्षिका की तरह सामने बैठकर करवाती हूँ। होमवर्क वगैरह देख लेती हूँ -- यह मेरी ड्यूटी है। मुझसे बच्चे नफरत करते हों -- ऐसा भी नहीं है -- मेरे पास आते हैं, साथ लेट जाते हैं, स्कूल की बातें सुनाते हैं, मुझसे, स्कूल की बातें पूछते हैं -- छुट्टी के दिन दोपहर को मेरे पास ही सो जाते हैं -- कभी पूछते हैं -- ''छोटी मम्मी, तुम नौकरी क्यों करती हो?'' छोटा पूछता है -- ''तुम्हारा पापा कहाँ है -- हमारी मम्मी का पापा वहीं सोता है।'' उसका पापा से मतलब मेरा पति। खैर, बड़े होंगे तो सब समझ जाएँगे। आसपास लेटे-बैठे देख महसूस कर लेती हूँ -- गोद भरी है मेरी। जन्म तो मैंने ही दिया है। रातें नहीं जागी उनके लिए -- गोद में उठाए या सीने से लगाए गुनगुनाकर नहीं सुलाया -- मैं मजबूर थी। मेरे कमरे के बाद बड़ा हॉल, फिर उस पुरुष-स्त्री का बेडरूम, फिर बच्चों का, उनके बेडरूम के बीच दरवाजा था -- मैं दूर थी उनसे -- पापा-मम्मी-बच्चे वही उनका परिवार है -- मैं सबकी एक परिचिता-सी रहती हूँ।

कभी लगता उस पुरुष को कुछ हो गया तो वह स्त्री मुझे निकाल देगी तब... तब बच्चे भी न देख पाऊँगी। मन इसके विपरीत भी सोचता -- काश...किसी सुबह उसे बेडरूम में वह स्त्री सोई ही रह जाए... तब...तब...नहीं-नहीं, बच्चे सह न पाएँगे।

एक दिन बच्ची का पेट दुखने लगा -- वह मेरे पास ही सोई थी -- पेट दुख रहा है।

मैंने कहा -- लाओ मल दूँ -- गोली भी देती हूँ।

''नहीं'', -- वह रो दी -- ''मम्मी...मम्मी...मम्मी के पास जाऊँगी।'' मम्मी के पास चली गई। ...मैं सूने कमरे में खड़ी दूर होते स्वर को सुनती रही।

एक दूरी या अजीब-सा रिश्ता बच्चों से। हर पल एक टीस-सी उठती है जिसे दबा देती हूँ -- बच्चे आँखों के सामने तो हैं न! यही आधार है जीने का। तुम मेरी स्थिति का अंदाजा लगा सके क्या?

मेरे छोटे-से वेतन की किसको परवाह हो सकती है। तीनों के नाम अकाउंट खोल दिए हैं -- हर महीने जमा कर देती हूँ। बड़ा समझने लगा है -- खुश हुआ। ''छोटी मम्मी ने पैसा जमा किया मेरे नाम।''

उसकी खुशी देख आँखें भर आईं मेरी -- क्या बड़े होकर बच्चे मुझे मातृ पद दे देंगे -- माँ भी न बन पाऊँगी ऐसा कभी न सोचा था मैंने -- क्या हूँ फिर मैं...

कभी-कभी मैं अपने आपको दुत्कारने लगती हूँ। जो हूँ वहीं बनी रहूँ -- है न बेशर्मी की हद -- विवाहिता बच्चों वाली होकर, पर-पुरुष 'तुम' की सोचने लगती हूँ।

पर क्या करूँ -- श्लथ तन के आँखें मूँदते ही -- जैसे कोई चितेरा अंदर जाग जाता है ब्रश-रंग ले। एक चित्र बनाने लग जाता है -- एक चेहरा उभरता है, अधर बनते हैं, आँख बनती हैं, नाक बनती है, फिर आँखों में हँसी -- ओठों पर मुस्कराहट बिखर जाती है। चित्र एकदम सजीव हो जाता है -- तब धीरे-धीरे हर्षोल्लास से भरा मन हल्की-सी थरथराहट महसूस कर हल्का हो जाता है। कैसी हूँ न मैं -- जहाँ विवाहित के लिए स्वप्न में भी पर-पुरुष देखना वर्जित है, मैं दिवास्वप्न में जागते हुए भी देखती हूँ। कभी रात में स्वप्न आता है -- किसी फुटपाथ पर जा रही हूँ -- सामने भीड़ दिखाई देती है -- कार दुर्घटना -- जख्मी पड़े 'तुम' हो -- टैक्सी में रख अस्पताल ले जाती हूँ। आँखें झर रही हैं -- तुम्हारे शीघ्र स्वस्थ होने की कामना कर रही हूँ -- बार-बार पूछती हूँ -- चोट ज्यादा तो नहीं आई -- दर्द बहुत है -- टाँके लग जाते हैं -- पट्टी बँध जाती है -- फिर पूछती हूँ -- पता या फोन नंबर दे दो... तुम्हारे घर का -- सूचित कर दूँ -- 'तुम' कह देते हो -- मेरा कोई नहीं है। न घर, न फोन -- तुम कुछ देर और बैठो न...

मैं कह देती हूँ -- मेरा घर है, पति हैं, बच्चे हैं, मुझे समय पर घर पहुँचना है -- सुबह स्कूल के लिए निकली -- तो तुम दिखे -- आज स्कूल भी न जा सकी -- मैं तुम्हें पहचान फिर क्यों लौट आई -- मुझे भी लगता है मेरा कोई नहीं है -- मैं अकेली हूँ। न घर -- न पता -- न फोन -- तभी तुम्हें लिखने बैठ गई अपनी रामकहानी -- पल-दो-पल को ही सही -- स्वप्न में ही सही। तुम दिखते हो तो -- अच्छा लगता है -- तुम्हारी आँखें हँसती हैं, ओंठ मुस्कुराते हैं और कभी-कभी एक साया-सा सरसराता लगता है साथ के खाली पलंग पर -- है न पागलपन की हद 'तुम' कभी मुझे भी लिखोगे...

❑

Kamlesh Bakshi
Tr. : Rani Motwani

You

I thought of writing to you but didn't know from where should I start. I have a lot to tell; actually I want to share a slice of my life with you. I have lot of complaints. I am upset not only with you but with myself and the way my life has shaped, the past and the uncertain future. I want to write about my life so that when you read it, at least you will say, its only a list of complaints, its not a love letter. You will not throw it in a dustbin.

Before penning this letter I thought you were very close to my heart and I knew you well... understand you. In reality, you are a mystery to me. I don't know you at all. sometimes I see you in my dreams and at times when I am awake I get a fleeting glimpse of you; a soft smile on your lips and laughter in your eyes. Without blinking I stare at you. How can eyes laugh. Really, but your eyes were laughing. I gave a name to that person 'You'.

I have not seen you anywhere on the earth. How could I be so close to a person whose name and address is unknown. Every morning waves of people come out of homes and mingle with crowds on the road. These are tidal waves of human beings in the mornings. I look at the tidal waves of human beings where each wave comes from different home and merges with others on the road. In the evening, tidal waves of human beings are seen, but moving lazily, returning from work. I desperately search for you in the crowd. I look for you in the queue at the bus stops, inside the bus, and then I get scared and close my eyes, suppose I see you and you are totally different from what I imagined you to be.

This nagging fear is always lurking.... suppose you are not soft from within, I would be shattered. I keep walking without looking at anyone. Isn't it very bold for a married woman like me to write a letter to someone unknown I asked my heart and mind. First there was no reply. Then both were murmuring, sometimes you have to find support to deal with problems in life... Yes, a small support is enough to keep you afloat. You with your smiling eyes are that small support which has time and again saved me from sinking.

My life is neither bed of roses nor full of thorns. Looks like a small child has spread,, broken pieces of pearls, thorns, flowers all mixed up. My life too is ripped apart.

Life is like a broken wall. The wall that brakes, brick by brick is stocked. cemented but the weak wall crashes again. This is the story of my life. I am working as a teacher, which is the only crutch I hold on to.

One afternoon, during lunch break, while chatting with my colleagues, suddenly I said, "I am tired of changing colors in the same painting over and over again. but the painting never gets changed. Somebody said, "Tear it off. Start all over again. Take new colors and a new brush. A spoilt painting can never get completed to your satisfaction."

My life has been like an open book for all. Some colleagues are senior and some are junior. Senior colleagues have seen me, a quite, sad girl. Juniors have seen my disgraceful life. It's like slipping on the moss and then rolling in the mud, often wounded from within, yes that exactly is my married life.

No one can see my bruises and the pain I suffer. I look around. Of course there are ways out of this mess but I couldn't take even a single step in that direction. I gave up. I found solace in my dream land. My life may be an agony, but what's wrong in dreaming? I shut my eyes to everything around me. In my mind's eye, I see a form, shaping up. I visualize him. I start talking to him. I laugh, I cry, I go and sit with him on the sea shore. Sometimes kids too are around us.

These are but a few happy moments of my life. I can't deny myself the pleasure of your company. I want to protest. Why do you come. Your momentary appearance is like a cool shade in scorching summer heat. One can go on walking in the blazing sun throughout the day, but a momentary cool shade makes him soft. You got it! If I revel in the past, my childhood too was constant agony. My stepmother would torment me by keeping me hungry for more than two days, I kept quite because I could see the helplessness in my father's eyes. I learnt to suffer silently.

Ours was a typical lower middle class family where my stepmother had two sons and one daughter. I was unwanted member of the family.

One day, without my consent my stepmother fixed up my marriage with one of her very rich relative. My colleagues were stunned to see so much jewelry, gifts, clothes, etc. They said, "yes, a beautiful, sweet natured girl deserves all this." They appreciated my stepmothers' efforts to get me married.

Just prior to marriage, I learnt the truth, but alas, I again kept quiet becouse I saw the desperation in my father's eyes. I was going as a second wife to the man whose first wife was alive and will continue to live with him. First wife was pretty, well groomed, suitable to move in the society with her husband. First wife herself had arranged for this marriage. She was unable to conceive. She thought this option better than adopting a child. At least the father of the child would be her husband.

When I got married the first wife stayed with her parents for a month. Then she returned. On her return, her husband started living with her in their room. Nothing has changed since. Sometimes he did come to me, but now he has

stopped. Before my marriage, they had asked me to give up my job. Within a year of marriage I gave birth to a daughter. I was told by Didi, yes that's what I call the first wife Didi and the servants call her Badi Memsahib after my entry in this house, "Shilu, you need rest. I will take care of the child."

She took my baby and her cot to the children's room which was next to her bedroom. She took care of the baby with the help of a nanny Baby was brought to me only for feeding for the first three months. After that she stopped even that and curtly said, "Now the child is mine. I will take care of her. Okay Shilu."

I nodded helplessly.

I couldn't do a thing. I had lost all courage, I couldn't even protest and say, this is my first child, I want to take care of her. I will give you my second one. I read, I slept, but the time was hanging on me. I thought that this man must be devoted to his first wife, both are so much in love with each other, otherwise for a man to be attracted to a younger woman would be but natural. Wife too had sacrificed, taken a big risk. She got her husband married for the second time. This step taken by her could have proved to be traumatic. Tables could have turned against her. I was moved by their faith and devotion. They only needed a surrogate mother. After some time. I felt, I was trapped, ill-treated. I became scared of both of them. I was in doldrums and became depressed. My parental home and in laws place had become equally difficult to live in. I wanted to visit my parents. I was told I could go but without my baby. Baby will be looked after by them. I came back to my father's house. I met the Principal of the School. She gave me a job on temporary basis. When I did not return to my in laws place, things became clear to their friends and relatives. In laws tried to frame me by saying I had taken away jewelry worth Rs. 20,000/- This was either to save themselves or frame me to return. I don't know. This time I did not give in to the plea of my father to return to in laws. I told him, I will not go back there but stay separately if you think my staying with you can pose a problem for your other daughter's future.

Those were my most traumatic days. I had moved out of my home with only few clothes and jewelry. To add to my misery stepmother spread the word that she has left her 3 month old baby and come here. What a cruel mother she is. She is not going back to her in laws. She will ruin us. How do I make her understand the home belongs to the woman who bears a child. Three months later, a servant came to inform me that my baby suffered from diphtheria and had died. I couldn't hold back my tears. "Sahib is waiting in the car". the servant informed. Father consoled me. Stepmother readily packed my bag. I saw the baby after three months. She was looking bigger. I thought she will get up and smile. I don't know why but for some reason I blamed myself for her untimely death.

I was sad, very sad. I stayed back with them. I had no other alternative. Both behaved decently. They gave me permission to continue working but at the

same time reprimanded sternly, "How could you just leave and go away. We have a status in the society. You have to follow the decorum."

I kept quite. Even nanny taunted me. What sort of mother are you! Big Mem Sahib took care of your baby day and night. The second inning in that house made me realize that the first wife is the only child of rich parents who had given their entire business to their son in law. The man and woman own the factory as partners. Both work under their guidance.

Now my opinion about this man changed. Mostly in meetings, outings at club, society functions they went as husband and wife. At the end of the year, I gave birth to a son. This time celebrations were on a lower scale. Didi said ..... we will celebrate his first birthday on a grand scale. Sometimes I was touched by her show of concern and at times hated her for being a wall between me and my child. I never saw the man craving for a child. He never picked up his child or played with him. He was complacent as long as his first wife was happy. After a year, my son's birthday was celebrated. There was a big party. After some time I gave birth to a girl and then after two years a son was born with that ended my job as a surrogate mother. Didi was always busy amidst three healthy children. At this point of time, I thought of Devaki. Yashodhara was happy carrying and playing with Krishna and Devaki could not even see Krishna doing childish tricks. At least I can see my children growing up. Didi's motherly instincts are satisfied. In the beginning I thought my child was taken away from me. Now I know children understand that I am their mother but they are attached to Didi more than me. I am their *chhotti mummy*. On outings, picnics, cinemas, holidays at hill stations, they all five go together. They do offer to take me, but I don't go with them. I feel like an outsider. If I want to take them out, they want mummy too to come along. Over a period of time, this wish of mine too faded away.

My three children have turned five, seven and eight years respectively, but I still feel as if I am childless. I have some rights in this house. If my colleagues come home, I can decide what is to be cooked, also can introduce them to my children. I continue working. So far no one has told me not to. I have everything, good food, clothes, servants, car, children, husband. I don't use the car. I travel by bus. Earlier, sometimes, I would go for movies with my colleagues but now I don't go out with them. A wife normally likes to spend time with her children and husband, going out with them, talk about family matters, may be a bit of argument. My life is like a river that seems to flow smoothly, but, I am bored. By now I am sure you know who I am, and how I am living.

Children generally go with their demands to Mummy. Mummy today you get comics for me. Mummy today is Ritu's birthday, get some gift for her. Mummy you come to pick us up from school. If you don't come, *Kutti*... Today is sports day, mummy you come to school. They want to see mummy while going to school and on their return. All emotions of love and anger are reserved for her. I sit with them like a teacher and take lessons. That is my job. They

don't hate me. They come to me. Sit with me, tell me about their school activities and ask me about my day at school. Holiday afternoons they generally spend with me. Sometimes they ask me, " *Chhotti mummy*, why do you go out to work?" One day the smallest asked me, "Where is your papa? Our mummy's papa sleeps in her room with her." He meant my husband when he was referring to papa. Anyway, they will understand this situation when they grow up. When they are with me, I feel as if I am their mother. After all I have given them birth. I have not remained awake at nights holding them in my arms singing lullabies. I was helpless.

There is hall adjacent to my room. After that there is a bedroom where that Man and Woman live and next to their bedroom is children's room. They are far from me. The family consists of papa, mummy, children. I am like a relative.

I fear if anything happens to that man, the woman will throw me out. I will not be able to see my children. At times, I wish the woman in that bedroom goes to sleep and never gets up ... then .. oh, but children will not be able to take it.

One day my daughter was in my room, her stomach started paining. She said, "my stomach is paining." I told her, "Come baby, I will apply gel and give you a tablet."

"No .. " she cried, "I will go to mummy." She went to that woman. I was left alone. Helplessly, I listened to her receding wailing sounds.

I share a peculiar relation with them. Sometime a pang of uneasiness creeps in. Now I am sure you know my non-status life.

My salary package is too small for anyone to be interested in it. I have opened accounts for all my three children. Every month, I deposit salary in their account. My eldest has begun to understand. He says, "Chhotti mummy has deposited money in my account." I had tears in my eyes when I saw him happy. I wonder if and when they will treat me like a real mother. Never in my wildest imagination I had thought that I will be a mother only in a name .. chhoti mummy. Who am I ?

At times, I hate myself. I am married woman with children but still dream about 'you'.

I am helpless. The moment I close my eyes, a painter starts painting; the lips, the nose, the eyes -- all take shape. The face comes alive. Lips and eyes smile. This makes me happy and relaxed.

I see a dream. I am walking alone on the footpath. I see a crowd. An accident has taken place. The man lying on the road injured is you. I pick you up and take you to the hospital. Desperately, I pray for your well-being. "Are you hurt? Are you in pain?" I ask. I ask for phone number, address to inform your people about the accident. You say, "I have none. No phone number, no home. Sit with me for sometime. I say, "I have home, husband and children. I have to reach on time."

Next morning while going to School, I noticed you on the road amidst the crowd. I couldn't go to School. I don't know why? I came back. I too feel I am alone, no home, no address, no phone and, therefore, sat down to write my story. In dreams and thoughts, I get momentary glimpse of you, but you reappear randomly. When you do, I feel nice. Your eyes and lips smile and sometimes I feel a shadow somewhere in the bed next to me. Now, I think I am going crazy. I wonder whether you will ever write to me.

❑

समाचार पंजीयन (केंद्रीय) नियम, 1956 के नियम 8 से संबंधित तथा प्रेस और पुस्तक पंजीकरण अधिनियम, 1867 की धारा 19-घ की उपधारा (ग) के अधीन 'अनुवाद' पत्रिका के स्वामित्त्व तथा अन्य बातों का ब्यौरा :

प्रपत्र चतुर्थ

(देखिए नियम 8)

1.	प्रकाशक का स्थान	:	203, आशादीप, 9 हेली रोड, नई दिल्ली-110 001
2.	प्रकाशन की आवर्तिका	:	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	अर्चना प्रिंटर्स
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	वेस्ट सीलमपुर (गांधी नगर) दिल्ली-110031
4.	प्रकाशक का नाम	:	आनंद गुप्त
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	203, आशादीप, 9 हेली रोड, नई दिल्ली-110 001
5.	संपादक का नाम	:	श्रीमती नीता गुप्ता
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	203, आशादीप, 9 हेली रोड, नई दिल्ली-110 001
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो पत्रिका के स्वामी और भागीदार हैं या कुल पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर धारक हैं	:	भारतीय अनुवाद परिषद 24 स्कूल लेन, (बेसमेंट), बंगाली मार्केट नई दिल्ली-110 001

मैं आनंद गुप्त, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सही है।

आनंद गुप्त
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

डॉ. सुमित पी.वी.
अनु. डॉ. संगीता के.

साँड

कब्रिस्तान की बगल में असाधारण रूप से मरे हुए लोगों को गाड़ने की जगह पर बैठकर हाथों से मुँह छिपाकर जोय रो रहा था। कब्रिस्तान से गिरिजाघर की ओर जा रहे पादरी और साथी। संध्या बेला, सूरज की सुनहरी किरणें आकाश में कहीं छिपने की जल्दी में थीं। पता नहीं क्यों, आज चिड़ियाँ बिलकुल गायब थीं।

''अरे जोय, कैसे बैठा है यार? उठो। हम घर चलेंगे'' बेन्नी ने जोय का कंधा पकड़कर उठाने की कोशिश की।

''अरे बेन्नी, अपनी बेटी को अकेली छोड़कर मैं कैसे आऊँ? उसे अँधेरे से बहुत डर लगता है।''

''अरे, चल ना'' बेन्नी फिर उसका हाथ पकड़कर उठाने की कोशिश करता है।

''इस गड्ढे के अंदर जो पड़ी है, वह मेरी इकलौती बेटी थी न? अब मेरा जिंदा रहने का क्या फायदा! मैं क्यों जिऊँ? उसे किस चीज की कमी थी? हमने किस तरह पाला था उसे? हमारे साथ तो यही होना चाहिए था।''

खुद को कोसकर उसने फिर जमीन पर उकड़ूँ बैठने की विफल कोशिश की। मकबरे के पास कहीं छिपकर रोने वाले झींगुर एक पल के लिए संभ्रांत हो गए थे।

रिक्शाचालक रवि अपनी रिक्शा लेकर गिरिजाघर के सामने इंतजार कर रहा था। उसने बेन्नी के साथ रिक्शा चढ़ने वाले जोय की मदद की। घर पहुँचने पर शाम हो चुकी थी। दूर से ही दिखाई दिया कि आँगन में कुछ लोग खड़े हैं। बरामदे में हत्थेदार कुर्सी पर पिताजी झुककर बैठे थे। अंदर कहीं प्रकाशमान बल्ब की रोशनी दरवाजे के बीच से हल्की-हल्की आँगन को निहार रही थी।

रिक्शा से उतरकर बेन्नी के साथ बरामदे पर आते समय, बाहर के अँधेरे से एंटो और वेलायुधन भैया पास आए।

''बेन्नी, उसे अंदर ही लिटा दो। बाहर पाला पड़ रहा है।''

''ठीक है, एंटो भैया।''

अंदर के कमरे में जाते समय जोय की आँखें पत्नी की खोज में थीं। कमरे में उसे न देखकर जोय की नजरें निराश होकर लौटीं। अंदर के दूसरे कमरे में झाँककर देखा तो खिड़की के पास की चारपाई पर पड़ोस की स्त्रियों के बीच लेटकर रीना रो रही थी। जोय को देखकर सभी स्त्रियाँ अनिवार्य अकेलेपन को समझती हुई उठकर बाहर चली गईं।

''रीना'' उसके पास बैठकर जोय ने उसके कंधे पर हाथ रखा।

''जोय, हमारी बेटी को अकेली छोड़कर आए हो? उसे अँधेरे से डर नहीं लगेगा?'' रूलाई की लहर में उसका सवाल अधूरा कट गया।

''रीना, तुम इस तरह चिल्लाओ मत... इससे वह वापस तो नहीं आएगी नहीं?'' अंदर के आँसू की गंध और ऊष्मा से जोय को कुछ अजीब-सा लगा। वह उठकर जल्दी बाहर निकला तो पिताजी उसके पास आ गए।

''जोय, सब कुछ ठीक से हुआ न?''

जोय ने केवल एक 'हाँ' में जवाब को समेटा।

''उस इंसपेक्टर का दो-तीन बार फोन आया था। कह रहे थे कि तुमसे मिलना है।'' -- पिताजी ने बोला।

''जी''

आँगन में इधर-उधर बिखरे खड़े पड़ोसी सब घर जा चुके थे। आँगन के अंतिम छोर पर लेटे दो कुत्ते आकर जोय के पास खड़े हो गए। पता नहीं क्यों उस दिन चाँदनी भी कम थी।

बिलकुल नींद न आने से जोय की रात बहुत मुश्किल से कटी। अगले दिन भोर होते ही नहा-धोकर वह घर से बाहर निकला। पिताजी आँगन के घास उखाड़ रहे थे। नाँद में दोनों गाय, घास खाने के लिए, पिताजी की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। पिताजी के दोनों ओर कुत्ते खड़े थे। सब कुछ पहले के जैसा ही है। फिर भी कुछ कमी जोय के मन को चोट पहुँचा रही थी। उसने कंघी से बाल बनाए। पर्स और कलम लेकर रीना को ढूँढकर रसोईघर की ओर मुड़ा। मगर रसोईघर में कोई नहीं था। सोने के कमरे की ओर जाकर देखा तो वह सो ही रही थी।

''रीना उठो, समय बहुत हो गया है।''

चौंक कर तेजी से उठी और बाल बाँधती हुई शंकित निगाह से रीना ने जोय को देखा। कल खूब रोने के कारण उसका चेहरा सूजा हुआ था। उसकी आँखों के सवाल को समझकर जोय ने कहा, ''मैं इंसपेक्टर से मिल आता हूँ। कल उनका दो-तीन बार फोन आया था।'' जोय के साथ रीना भी बाहर तक आई।

''जोय''

''हाँ''

''हम एक बार बेटी के पास नहीं चलेंगे? कल पहली बार उसके बिना...'' उसने अपने अधूरे वाक्य को साड़ी के पल्लू से मुँह ढँककर एक सिसकी के साथ पूरा किया।

पीछे मुड़कर रीना के पास आकर जोय ने पूछा, ''ऐसा क्या हुआ था यहाँ कि हमारी बेटी ने...? उसे कुछ कमी महसूस होने तक हमने नहीं दिया था न? फिर उसने ऐसा क्यों किया? पुलिस के पास भी पूछने के लिए यही सवाल होगा।''

जोय जब बाहर निकला तो उसके सामने बड़ी आवाज के साथ पुलिस जीप आ रुकी। अपरिचितों को देखकर दोनों कुत्ते आँगन के एक छोर पर जाकर भौंकने लगे। पिताजी भी सिर पर बाँधे तौलिए को निकालते हुए वहाँ आए।

इंसपेक्टर जब्बार जीप से बाहर निकल आए। वर्दी नहीं, उन्होंने साधारण कपड़े पहने हुए थे। उन्हें देखकर जोय हल्का-सा मुस्कुराया।

''हेलो, मिस्टर जोय।''

''जी सर''

''कल फोन किया था तो आप नहीं थे। इसलिए सुबह ही आया।''

''मैं आपसे मिलने के लिए ही निकल रहा था। आइए सर, बैठकर बात करेंगे।''

''नहीं मिस्टर जोय। इधर ही बात करेंगे। आपकी बेटी की असाधारण मृत्यु के बारे में हमें जाँच करनी होगी। आप भी हमारी मदद कीजिएगा।''

''जरूर सर''

''इधर कौन-कौन हैं?''

''मैं, पत्नी रीना, पिताजी और हमारी बेटी...''

''आपकी माँ?''

''चौदह साल पहले उनकी मृत्यु हो गई थी। उन्हें लकवा था।''

बेटी के बारे में इंसपेक्टर ने जो कुछ भी पूछा, जोय ने उसका सही-सही जवाब दिया। लेकिन बीच-बीच में जोय और दरवाजे के पीछे खड़ी रीना दोनों का संयम टूट रहा था। पिताजी आँगन के छोर पर, पत्थर के ऊपर बैठकर कुत्तों को सहला रहे थे। पुलिस जीप को देखकर पड़ोस के लोग गली में इधर-उधर बिखरे खड़े थे। वे आपस में फुसफुसा रहे थे।

''आपकी बेटी को कुछ दिक्कत थी? मेरा मतलब कोई मानसिक तनाव?''

''उसने कभी ऐसा कुछ कहा तो नहीं। हमने उसे कोई कमी महसूस होने तक नहीं दी थी। इसलिए हमने दूसरे बच्चे के बारे में सोचा तक नहीं। हमने अपना पूरा प्यार उसे ही दिया था। फिर भी हमारे प्यार को ठुकराकर वह चली गई।''

एक बड़ी लहर जोर से तट के पत्थरों पर टकराकर टूटकर बिखर गई।

''सर, उसी के लिए हम जी रहे थे। सब खत्म हो गया।''

''सब कुछ ठीक हो जाएगा। क्या मैं उसका कमरा देख सकता हूँ?''

''आइए सर...'' दोनों अंदर चले गए। रीना ने कमरे की बत्ती जला दी। कमरे के अंदर एक तरफ मेज, उसके ऊपर स्कूल बैग और कुछ किताबें रखी हुई थीं। किताबों को एक-एक करके देखते हुए इंसपेक्टर ने जोय से पूछा, ''उसे स्कूल में...?''

''नहीं सर, वह पढ़ने में होशियार थी, मगर वह कुछ महीनों से परेशान दिख रही थी। उसकी टीचरों ने भी ऐसा कहा था। हमारे पूछने पर उसने कुछ कहा नहीं।''

इंसपेक्टर के वापस जाते समय, जोय उनके साथ जीप के पास तक गया। ''पोस्टमार्टम के हिसाब से आपकी बेटी की मृत्यु जहर खाने से हुआ है। ठीक है... हम जाँच करेंगे। देखेंगे।''

पुलिस जीप आँगन को पार कर गली से दूर निकलती गई। जीप का आँखों से गायब हो जाने तक जोय उधर ही देखता रहा। उसके पीछे रीना और पिताजी ने लंबी साँस ली। उन तीनों के बीच मौन की एक बड़ी दीवार बनती गई।

दिन भर जोय कमरे में ही रहा था। उसका बाहर जाने का मन बिलकुल नहीं कर रहा था। उसी तरह दो-तीन दिन बीत गए। सुबह रीना के चिल्लाकर पुकारने की आवाज सुनकर जोय की नींद खुली।

''जोय, जरा इधर आओ।'' रीना जल्दी में थी। जोय उठकर कमरे से बाहर आया तो देखा रीना बेटी के कमरे में मेज के पास जमीन पर घुटनों पर बैठकर कुछ देख रही है। मेज पर जो किताबें थीं, सब जमीन पर इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं।

नीचे पड़ी ड्राइंग की किताब दिखाकर रीना ने जोय से कहा, ''जरा यह देखो... मेजपोश के नीचे पड़ी थी, उसकी किताब।''

उस पुस्तक के आवरण पर प्रसिद्ध गहनों की दुकान का विज्ञापन था। उसमें लिखा था -- विश्वास ही सब कुछ है। किताब को हाथों में लेकर जोय एक-एक पन्ना पलटने लगा। प्रथम पृष्ठ में सुंदर अक्षरों में लिखा था -- ट्रीसा जोय, पुत्तनकुन्निल हाऊस, कक्षा छह, सेंट स्टीफंस हॉयर सेकेंड्री स्कूल, चेरुपुषा।

पन्नों को पलटते हुए जोय का चेहरा अधिक से अधिक कठोर होता गया। सभी पन्नों पर ट्रीसा ने चित्र खींच रखा था। पापा और मम्मी के बीच खड़ी ट्रीसा, घर के कुत्ते, बिल्ली, बकरी सब उन चित्रों में थे। कई पन्नों के बाद एक पन्ना जरा सरककर बाहर झाँक रहा था। काँपते हुए हाथों से जोय ने उस कागज को बाहर निकाला। चित्र के नीचे तारीख लिखा था -- 12-11-2013। उसमें पापा, मम्मी और पिताजी थे। मरने के दो दिन पहले खींची गई तस्वीर। उसमें पिताजी का चेहरा पूरी तरह रंगा हुआ था। उस विकृत चेहरे से दूर तक खींचे तीर की नोक पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था -- 'आई हेट यू'।

घर के अंदर जोय चूर-चूर होकर बैठा था तो बाहर नाँद में पिताजी जवान बैल को बधियाने में व्यस्त थे।

❑

अंग्रेजी हाइकू

Prof. Nandini Sahu

Love

I flow down and undo the dichotomy
keep hanging and smiling
between the perished and the perennial

Happiness

Sandwiched between verbs
and predicates
I am the subject at the core of being.

Sleep

My sleep and seeplessness
play hide-and-seck.
It someone awake in me?

Waves

After all... time and tide, past and present
wander, dripping water on the new-moon.
The breeze recklessly swings day and night.

Winter

Come winter and my caravan clamours.
A violet river flows.
Lost in mist-nets, I chew off time.

❑

हिंदी अनुवाद

प्रो. नंदिनी साहू

प्रेम

मैं तैरते हुए और शून्य हो, सुदूर पहुँच गई
फिर भी मुस्करा रही हूँ
तभी तो नित्य और लय के बीच हूँ।

खुशी

कर्म और परिणाम के बीच बुझी
पर भीतर से आजाद हूँ मैं
अंतर से स्वतंत्र हूँ मैं।

नींद

मेरे सोने और जागने के बीच
मेरे भीतर समय
क्या कोई लुका-छिपी खेल रहा है?

मौज

अखिरकार... यह पल और ज्वार भटकते अतीत और वर्तमान में
नई उमंगों के साथ
हिंडोले ले रही है दिन-रात मंद पवन बेपरवाह।

सर्दी

सर्दी के आते ही मेरे अरमानों का काफिला उमड़ पड़ता है
जैसे एक नील नदी, बेपरवाह बहती जाती है।
धुँध के जाल में गुम, मैं वक्त को जीती जाती हूँ।

❑

मुनि राज सुंदर विजय
अनु. अ.म. चांपानेरी

अफसोस

आकाश में
उड्डयन करते पक्षियों को देखा।
मुझे भी
आकाश में उड्डयन करने की चाह हुई।
मैंने
उड़ने के लिए प्रयास किया,
और
मैं आकाश मे उड्डयन करने लगा।
जल में
तैरते मत्स्य समुदाय को देखा।
मुझे भी
जल में तैरने का मन हुआ।
मैंने
तैरने के लिए प्रयास किया
और
मैं जल में
मत्स्य की भाँति तैरने लगा...।
अवनितल पर
मानवों को देखा --
लेकिन
अफसोस
मुझे
मानव बनने की चाह नहीं हुई...।
और
मैंने मानव बनने का
प्रयास भी नहीं किया...।

❑

रमेश चंद्र

अनुवाद सिद्धांत चिंतन की नाट्य-रूप में नायाब प्रस्तुति*

भारत में नाट्य लेखन की परंपरा अति प्राचीन है। प्रारंभ में जब कितने ही देशों में नाटक नाम की विधा को लोग जानते भी नहीं थे, तब भरत मुनि ने आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व संस्कृत में 'नाट्यशास्त्र' की रचना कर डाली थी। जाहिर है देश में नाट्य लेखन परंपरा उससे कहीं अधिक प्राचीन थी। देश में कालिदास से लेकर आधुनिक युग के नाटककारों ने भारतीय साहित्य को समय-समय पर इस विधा से समृद्ध करने के साथ-साथ अपने पाठकों को इतिहास, सामाजिक परिस्थितियों आदि से भी परिचित कराया। प्रस्तुत नाटक उन्हीं नाटकों की परंपरा की एक कड़ी है।

'सेतु के आर-पार' नामक इस नाटक के माध्यम से श्रीमती संतोष खन्ना का यह कृत-कार्य आश्चर्यपूर्ण है, क्योंकि इसकी विषय-वस्तु हर प्रकार के कयासों से दूर एक भिन्न ही विधा -- अनुवाद-निरूपण -- पर आधारित है। अनुवाद सिद्धांत चिंतन जैसे विषय पर पुस्तकें तो बहुत देखीं, परंतु नाटक की रचना सभी नाटककारों की कल्पनाओं से सौ-सौ कोस दूर रही। फिर भी श्रीमती संतोष खन्ना ने अनुवाद पर हिंदी का पहला नाटक लिखकर यह दिखा दिया कि उनकी अनुवाद और नाटक दोनों पर गहरी पकड़ है। वहीं साथ ही उन्होंने वयोश्रेष्ठ अवस्था में जाने-अनजाने कितने ही लेखकों को चुनौती भी दे डाली है!

नाटक का आरंभ स्वर्ग-नरक के न्यायाधीश चित्रगुप्त के न्याय कक्ष से होता है और पाठकों में एक स्फुरण छोड़ता है। दूसरे शब्दों में नाटक की प्रथम पंक्ति से ही पाठक को सम्मोहन पाश में बाँधने की योजना शुरू हो गई। साथ ही साहित्यकारों को प्रभामंडल-युक्त दर्शाकर उन्होंने साहित्यकारों के ज्ञान को नमन किया। नाटक में चित्रगुप्त की न्याय सभा में अनुवादक को आरोपी बनाया गया है और प्रथम आरोप यह लगाया गया है कि ये दूसरों की कही हुई बात को दूसरी भाषा में कह देते हैं। इस कथन में उनकी शैली बहुत सशक्त रूप ले चुकी है :

> ''यह बहुत खतरनाक प्राणी है, महाराज! प्रवंचक ही नहीं, यंत्र-तंत्र क्रिया में भी विश्वास रखता है। परकाया-प्रवेश के बिना तो यह रह ही नहीं सकता, पूरा पोंगापंथी

* सेतु के आर-पार (अनुवाद सिद्धांत चिंतन विषयक नाटक), श्रीमती संतोष खन्ना, हेमाद्रि प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण : 2018, मूल्य : 300/-रुपए, पृष्ठ : 120

है। पृथ्वी पर धार्मिक कट्टरता की जो लहर उठ रही है, सब इसी की खुराफात है। आफत मचा रखी है महाराज इसने, आफत! उन्हें नरक के कुंभीपाक का दंड दें, ताकि दूसरों की तपस्या, साधना और सिद्धि के बल पर ये गुलछर्रे न उड़ाएँ।''

x x x x x

''महाराज, सावधान! यह शब्दों के जादू से आप पर मोहिनी मंत्र फेंक रहे हैं..... बड़े तांत्रिक लगते हैं!''

दूसरा आरोप साहित्यकारों की रचनाओं का हुलिया बिगाड़ने का है। दृष्टांत देखिए -- ''जिस रचना को भी ये हाथ लगा देते हैं, उसे गलीचे का उल्टा हिस्सा बना देते हैं ये मूलघाती, सौंदर्यघाती, साहित्यघाती!''

इस बात से नाटककार यह बात भी कह दी कि कुछ व्यक्ति अनुवादकों को साहित्यकार नहीं मानते अथवा द्वितीय श्रेणी का साहित्यकार मानते हैं। इसी प्रकार, नाटक में अनुवादक पर तरह-तरह के और भी आरोप लगाए गए हैं। अनुवादकों के उद्देश्य के बारे में भी निम्नलिखित आरोप बड़ा नाटकीय बन पड़ा है :

''महाराज! कमाल की जिज्ञासा है आपकी....! पूछो आप सिंधु में उठती लहरों से, वह किनारों को क्यों लील जाती है, पूछो आप क्रोधित किरणों से, वह धरती की हरियाली को क्यों जला डालती है, पूछो नदी की धारा से, बाढ़ उसके स्वभाव में क्यों है? महाराज! यह उनका स्वभाव है और स्वभाव आसानी से नहीं बदलता! उनके लिए नरक की हल्की-फुल्की यातना काफी नहीं होगी।''

समीक्ष्य नाटक में हास्य-व्यंग्य और प्रहसन की बहुत भरमार है, जिससे अनुवाद जैसे नीरस विषय को भी नाटककार ने सहज और वहनीय बना दिया है। उदाहरण के लिए,

''अनुवाद में (अनुवादक) पराई रचना को पार कर देते हैं (हँसी)।''

x x x x x

''नरक साहित्य का अनुवाद करने से अनुवाद नरक हो जाएगा!''

श्रीमती खन्ना ने चित्रगुप्त द्वारा अनुवादक के मामले में ढील देते देखने पर महादूत के मुख से अति व्यंग्यात्मक कथन कहलाया है :

''धीरे-धीरे नरक खाली हो रहा है, महाराज! आप अपना साम्राज्य चौपट करके रहेंगे!''

नाटक में क्रोचे, जॉनसन, ह्यूगो, कैटफोर्ड, मैथ्यू आर्नल्ड, शॉवरमैन, प्लेटो, अरस्तू, पाणिनी आदि देशी-विदेशी विभिन्न विद्वानों की अनेक उक्तियों; वेद-उपनिषदों आदि के मतों और अनुवाद संबंधी अनेक मानदंडों को सहज और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जो यह आश्चर्य छोड़ते हैं कि आखिर नाटककार ने उनका विपुल संकलन करने और उन्हें यथास्थान पिरोने की इतनी सुंदर योजना बनाई कैसे?

समीक्ष्य नाटक में अनुवाद के संबंध में संतोष जी की अपनी भी अनेक उक्तियाँ हैं, जो अत्यंत सटीक, प्रसंगानुसार, सहेज्य और उद्धरणीय हैं। ये उक्तियाँ अनुवाद के संबंध में उनके

गूढ़ ज्ञान और गंभीर मनन की परिचायक हैं। यदि कुछ देशी विद्वानों की उक्तियाँ और होतीं, तो इस मामले में यह रचना अधिक संतुलित होती। फिर भी अनुवाद के बारे में उन्होंने क्या-क्या कल्पनाएँ कर डालीं, समझ नहीं आता और अनुवाद तथा अनुवाद-कार्य की विविध उपादानों से तुलना तो नवीन प्रस्तुतियाँ हैं ही, उल्लेखनीय है कि ये उनके अपने मस्तिष्क का विलोड़न भी हैं, जो सार्थक भी हैं, सोद्देश्य भी हैं और प्रयोजन की सिद्धि भी करती हैं।

नाटककार ने नाटक में कथ्य-अकथ्य, कथोपकथन, संवाद, नाटकीयता आदि का निर्वहन भली-भाँति किया है -- वह भी बिल्कुल नीरस और अपरिकल्पनीय विषय पर अन्य सरस विषयों की तरह अति मनोरंजक ढंग से! नाटक को पढ़ते समय विज्ञ और सुधी अनुवादक तक इस बात से हैरान हो जाते हैं कि आखिर नाटककार नाटक में अनुवाद के विविध पक्षों, अंगोपांगों, सिद्धांतों, इसके प्रति धारणाओं का निर्वहन कैसे करेंगी और इसका पक्ष कैसे रखेंगी? परंतु वह सब हुआ और बहुत ही मनोरंजक एवं रुचिकर ढंग से।

प्रसाद के नाटकों की भाँति 'सेतु के आर-पार' नाटक में रहस्यवाद भी लगातार बना रहा। वास्तव में इस नाटक में नाटकीय तत्व जयशंकर प्रसाद की शैली और स्तर के और संवाद रामधारी सिंह दिनकर के स्तर के प्रतीत होते हैं। अनुवाद विषय के सहारे नाटक में नाटककार के जिस अथाह और विविध-रूपा ज्ञान के दर्शन हुए हैं, उसमें सम्मोहन है, आकर्षण है और उनका ज्ञान-सागर दिनकर की भाँति 'अगेय की ओर' अभिमुख हुआ हुआ लगता है अर्थात् यह नाटक अनुवाद के विषय पर हर ज्ञान को पार कर गया है।

नाटक में नाटककार श्रीमती संतोष खन्ना ने अनुवाद की महत्ता को लगातार प्रतिपादित किया है। उनका यह कथन सटीक है कि साहित्यकार होने में एक भाषा के ज्ञान की आवश्यकता होती है, परंतु अनुवादक होने में दो भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता होती है। साथ ही उसे देशी-विदेशी संस्कृतियों, इतिहास, परंपराओं, परिस्थितियों आदि से परिचित होना होता है। इसलिए कहीं उन्होंने अनुवादक को साहित्यकार से भी बड़ा बताया है :

''संभव है कोई कम शिक्षित उच्च कोटि का साहित्यकार हो जाए (जैसे वाल्मीकि) ...परंतु कोई कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति अनुवादक नहीं हो सकता।''

और कहीं मूल और अनूदित पाठ में कोई अंतर नहीं बताया, जैसे :

''(चित्रगुप्त द्वारा) यमदूत, मैं आपका तात्पर्य समझ गया। मूल और अनूदित में कोई अंतर नहीं होता, वह भी मूल ही होता है।''

x x x x x

''अनुवाद अन्य कलाओं की भाँति एक रचनात्मक विधा है।''

x x x x x

''(साहित्यकार के ही मुख से) यदि आज अनुवादक सक्रिय न होते तो साहित्य क्षेत्र में सूखा ही सूखा होता।''

x x x x x

''ये (साहित्यकार और अनुवादक) दोनों ही सरस्वती के वरद् पुत्र हैं।''

नाटक में चित्रगुप्त, महागुप्त, यमदूत, अनुवादक, अनुवादिका, सिद्धांतकार, साहित्यकार, ससीम, गीताकार आदि का जो ताना-बाना बुना गया है, वह विषय के अनुसार बहुत सटीक है। नाटक में अनुवाद की परिभाषाएँ, अनुवाद का स्वरूप, अनुवाद का भाषाविज्ञान, अनुवाद में अनधिकार प्रवेश, अनुवाद के लिए आवश्यक योग्यताएँ, स्थितियाँ, कर्मठता और मनस्विता, अनुवाद की विशेषताएँ, अनुवाद की आवश्यकता आदि सभी के बारे में विपुल प्रकाश डाला गया है। नाटक में शिल्प का बड़ा महत्व होता है, परंतु ऐसा लगता है शिल्प-विधान के लिए भाषा तो नाटककार का एक सहज उपकरण है। इसमें उन्हें कहीं कोई असुविधा हुई नहीं लगती और भाषा पर उनका पूरा अधिकार प्रकट होता है।

नाटक में यूँ तो अनुवाद में लगने वाले श्रम और अनुवाद की महत्ता को तरह-तरह से परोक्ष-अपरोक्ष रूप में उकेरा गया है, फिर भी यमदूत-2 के इस कथन से तो अनुवादक का लोहा स्पष्ट रूप से मनवाया गया है -- ''महाराज! अनुवाद जैसे दुश्वार कार्य को दूर से ही नमस्कार!''

नाटक के अंतिम अंक में अंततः स्वयं चित्रगुप्त के मुख से अनुवाद की आवश्यकता और उसके महत्व के बारे में जो भाव-भीना और सारगर्भित वर्णन कराया, वह चित्रगुप्त के निर्णय की पूर्व-पीठिका बना। नाटक का यही उद्देश्य था और नाटककार ने इसे जिया।

नाटक का 'सेतु के आर-पार' नाम अनुवाद को स्रोत और लक्ष्य दो भाषाओं के बीच का सेतु मानकर रखा गया प्रतीत होता है। परंतु मुझे तो लग रहा है यह नाटक अनुवाद विधा के ही आर-पार हो गया। इसमें अनुवाद के संबंध में ऐसा कुछ छोड़ा प्रतीत नहीं होता, जो अन्यत्र हो। समीक्षा के लिए इस रचना के पठन से पहले मैंने नहीं सोचा था कि यह इस प्रकार हर रूप में संपन्न मिलेगी। यदि इस नाटक के बारे में विस्तार से लिखने की स्वतंत्रता मिली होती, तो संभवतः स्वयं इससे भी बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती थी।

वस्तुतः नाटक जैसी विधा में अनुवाद सिद्धांत चिंतन का प्रस्तुतीकरण एक बहुत श्रमसाध्य, विज्ञतापूर्ण और समर्पण-भावना से पूरा किया गया कार्य है। मैं समझता हूँ कि यह नाटककार की उत्तम कृतियों में से एक है। लेकिन, साथ ही, झुँझलाहट इस बात से है कि यह नाट्य-कृति पहले प्रकाश में क्यों नहीं आई? प्रकाशन की दृष्टि से कृति श्रेष्ठ है -- विशेष तौर पर आवरण पृष्ठ बड़ा आकर्षक है। अपने विषय की प्रस्तुति में पूरी तरह सफल होने वाली यह कृति महान उपन्यासकार प्रेमचंद की गागर में सागर भरने वाली कृति 'निर्मला' की अनुगामी प्रतीत होती है। नाटककार को साधुवाद!

❑

डॉ. किरण सिंह वर्मा

'अनुवाद' पत्रिका के रूसी विशेषांक का लोकार्पण

'अनुवाद' पत्रिका के 'रूसी विशेषांक' (जुलाई-दिसंबर 2017, अंक : 172-173) तथा 'रूसी अनुवाद' पुस्तक का लोकार्पण नई दिल्ली के चाणक्यपुरी में स्थित रूसी दूतावास में एक भव्य समारोह में 26 जुलाई 2018 को संपन्न हुआ। लोकार्पण-समारोह की अध्यक्षता रूसी दूतावास के मिनिस्टर काउंसलर तथा प्रभारी राजदूत महामहिम अनातोली कर्गापोलोव ने की। समारोह में भारतीय अनुवाद परिषद के पदाधिकारियों के अलावा, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के रूसी भाषा के विशेषज्ञ, राजनयिक तथा पत्रकार उपस्थित थे।

अपने स्वागत-भाषण में श्री कर्गापोलोव ने उपस्थित श्रोताओं का स्वागत करते हुए इस तथ्य को रेखांकित किया कि 'अनुवाद' पत्रिका के 'रूसी विशेषांक' का प्रकाशन जोहानसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में ब्रिक्स देशों (ब्राज़ील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) के नेताओं के शिखर सम्मेलन के अवसर पर हुआ है। इसलिए यह लोकार्पण-समारोह विशेष महत्व रखता है। भारत-रूस राजनयिक संबंधों की स्थापना के 70 वर्ष पूरे होने पर प्रकाशित यह 'रूसी विशेषांक' भारत-रूस संबंधों को, निश्चय ही, नया आयाम देता है और यह प्रमाणित करता है कि दोनों देशों के संबंध संस्कृति और शिक्षा की दिशा में भी आगे बढ़ रहे हैं। इसके लिए उन्होंने भारतीय अनुवाद परिषद को बधाई दी।

विशेषांक के अतिथि संपादक प्रोफेसर हेमचंद्र पाँडे ने आरंभ में भारतीय अनुवाद परिषद का संक्षिप्त परिचय देते हुए परिषद की गतिविधियों की जानकारी श्रोताओं को दी। इसके बाद उन्होंने 'अनुवाद' पत्रिका के इस अंक में प्रकाशित सामग्री का परिचय दिया। उन्होंने बताया कि इस विशेषांक में 9 कहानियाँ, 2 एकांकी, 6 कविताएँ, 7 लेख, 6 अनुवादक-परिचय तथा साक्षात्कार और रूसी से हिंदी में अनूदित गद्य-साहित्य की सूची दी गई है। अनूदित कहानियों,

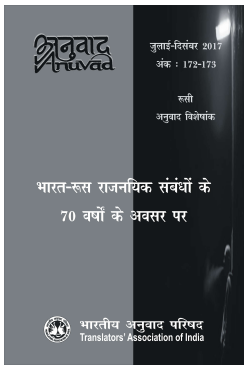

कविताओं और एकांकियों से समकालीन रूसी साहित्य की एक झलक पाठकों को मिल सकेगी। विशेषांक में सम्मिलित लेख दो प्रकार के हैं -- 2 लेख रूस की अनुवाद-परंपरा तथा रूसी अनुवाद-सिद्धांत पर प्रकाश डालते हैं, 4 लेखों में रूसी-हिंदी और हिंदी-रूसी अनुवादों की चर्चा की गई है; 1 लेख का विषय रूसी-अंग्रेजी अनुवाद से संबंधित है। इन लेखों तथा अनुवादकों के परिचयों और साक्षात्कार के रूप में दी सामग्री की एक विशेषता यह है कि इनसे रूसी-हिंदी अनुवाद का ऐतिहासिक स्वरूप बनता दिखाई देता है जो अनुवाद-अध्ययन का एक बिंदु भी हो सकता है। इस तरह विशेषांक का फलक अत्यंत व्यापक और अपने आप में सार्थक भी है। विशेषांक की सामग्री को भारतीय अनुवाद परिषद ने ही पुस्तक के रूप में 'रूसी अनुवाद' नाम से प्रकाशित किया है।

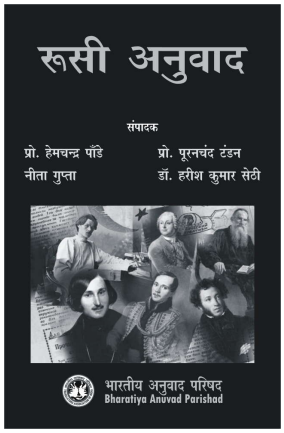

इसी अवसर पर दो अन्य पुस्तकों का भी लोकार्पण किया गया। इनमें से एक प्रो. हेमचंद्र पाँडे द्वारा संपादित 'रूसी अनुवाद विविधा-1' तथा दूसरी दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. गिरीश मुंजाल और डॉ. दीपिका वशिष्ठ द्वारा रूसी भाषा में संयुक्त रूप से लिखित पुस्तक 'रूसी रूपविज्ञान का परिचय' हुआ है। 'रूसी अनुवाद विविधा-1' पर प्रोफ़ेसर रीतारानी पालीवाल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि रूसी-हिंदी अनुवाद से जुड़ा यह काम हिंदी के पाठकों को नए प्रकार की सामग्री से अवगत कराता है। 'रूसी रूपविज्ञान का परिचय' शीर्षक पुस्तक रूसी भाषा के स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। इस पुस्तक का परिचय पुस्तक के लेखकों -- डॉ. गिरीश मुंजाल तथा डॉ. दीपिका वशिष्ठ -- ने श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया और उसकी कुछ विशेषताओं पर प्रकाश भी डाला।

अंत में रूसी सांस्कृतिक केंद्र की कार्यवाहक निदेशक तत्यानापेरोवा ने 'रूसी विशेषांक' के प्रकाशन का स्वागत किया और कहा कि रूसी साहित्य के अनुवाद की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण पहल है। उन्होंने रूसी सांस्कृतिक केंद्र की गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय भी श्रोताओं को दिया।

लोकार्पण-समारोह में भारतीय अनुवाद परिषद की ओर से श्रीमती संतोष खन्ना, डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम तथा डॉ. हरीश कुमार सेठी और विशेषांक के लेखकों/अनुवादकों में से सुश्री अर्चना उपाध्याय, डॉ. गिरीश मुंजाल, डॉ. किरण सिंह वर्मा, सुश्री सोनी शर्मा और प्रो. हेमचंद्र पाँडे उपस्थित थे।

❑